सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-282002 (आगरा) उ.प्र.

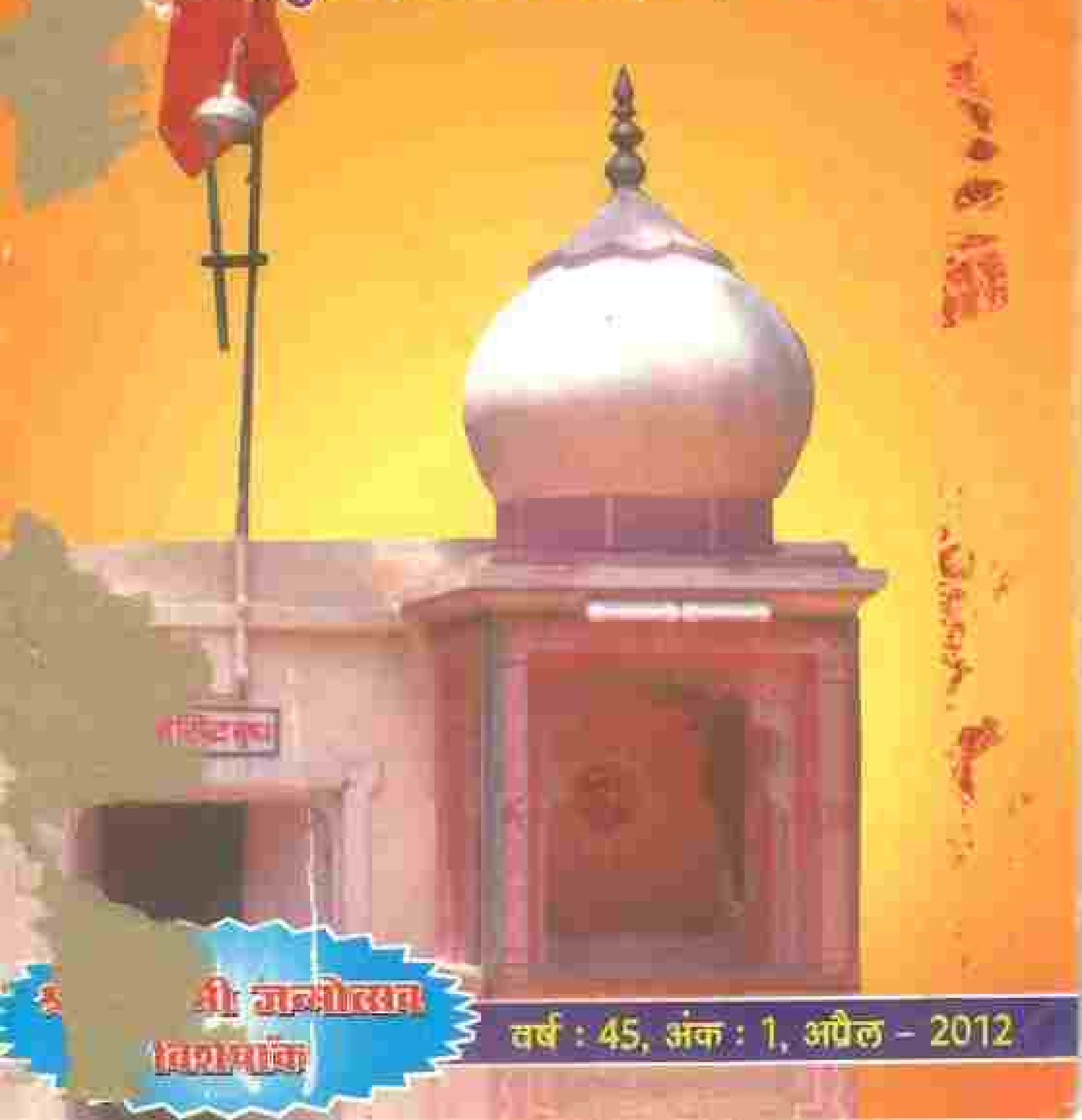

वर्ष : 45, अंक : 1, अप्रैल - 2012

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 45 | अप्रैल 2012 | अंक : 1

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वधियो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं
स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु।

जो रुद्र इन्द्रादि देवताओं को उत्पन्न करने वाला और बढ़ाने वाला है तथा जो सबका अधिपति और महान ज्ञानी (सर्वज्ञ) है। जिसने सबसे पहले उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भ को देखा था, वह परमदेव परमेश्वर हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करें।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	10
3.	प्रभु श्री रामलाल जी भगवान... – अनिल कुमार सिंह	14
4.	गुरु वन्दना – बनवारी लाल चतुर्वेदी	19
5.	श्री महाप्रभु जी की जगत पर दया – अवनीश भटनागर	20
6.	कविता – राजीव कुमार	24
7.	कालचक्र – विजय कुमार शर्मा	25
8.	अभ्यास और वैराग्य से योग सिद्धि – डॉ. जे.पी. शर्मा	28
9.	गुरुदेव हैं कौन? – डॉ. अमित कुमार	37
10.	लोक–परलोक–मोक्ष तक	32
11.	श्रद्धांजलि	36
12.	योग आसन – त्रिकोणासन	38
13.	श्री गीतामृत – पदावली	40
14.	सच्चाई वाले सरकार – जगदीश राय बंसल	44
15.	भारतीय कला पर सिद्धयोग का प्रभाव – डॉ. राजकिशोरी सिंह	45
16.	सत मत में सद्गुरुतत्व की महत्ता – प्रो. डॉ. श्री विजय सिंह	51
17.	परमात्म दर्शन किसे और कब होता है? – प्रो. अभिराम शर्मा	56
18.	आरोग्य – विधान	63
19.	जीवन गठन की साधनाएँ	67
20.	देवत्व प्राप्ति का साधन – श्री रघुनन्दन सिंह शास्त्री	69
21.	योग सिद्धियाँ और उनकी प्राप्ति – श्री अशोकचन्द्र शास्त्री	75
22.	आय–व्यय का विवरण वर्ष – 2011–12	80

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 270.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

• *हमारा विशेष लेख*

मेरे श्री गुरुदेव

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूँ यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। गुरुदेव एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिए मान्य है और हर व्यक्ति जो किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणागति प्राप्त कर चुका है, उसके लिए उसके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तकवह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता, इसलिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखने वाली भारतीय जनता अपने–अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम पुनीत सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या है और उनका स्वरूप क्या है? यह एक पृथक लेख का विषय है, जिसका प्रकाशन इस पत्र के किसी अंक में अवश्य होगा। फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं, एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक

श्री श्री 1008 योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

की श्रद्धा से निर्वाचित स्वरूप। जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के 17वें अध्याय में कहा है :

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्द घन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्‌गार है। श्रद्धावान् व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट, नामदेव आदि के जितने उदाहरण मिलते हैं वह सबके सब श्रद्धा के ही उज्ज्वल प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त के हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के अनुरूप ही वह लोग फल को पा लेते हैं ''यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।'' इसके अतिरिक्त यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण है और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्ट लाभ में कोई शंका का स्थान है ही नहीं। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने लगा हूँ सिद्धों के महा सिद्ध, सर्व समर्थ योगयोगेश्वर व सर्वतः परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पाये हैं। सम्भव हो सकता है इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो किन्तु उनके चरणारविन्दों के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन समुदाय के अन्दर जो-जो चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे-से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

उनकी पवित्र जन्म भूमि अमृतसर (पंजाब) है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गण्यमान्य विद्वान् महामान्य पं. गण्डाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बाल-क्रीड़ा करते हुए घर पर रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। उसमें सब से बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि जहाँ-जहाँ पर कोई पहुँच वाला सन्त मिलता और मेरे गुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गद्‌गद् कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख माँगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेव जी के जीवन चरित्र के विषय में कुछ लिखूं, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वह घटनायें घटीं जो सर्वसाधारण के जीवन में कभी हो नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में माता-पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना, छः साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थी उसके सिर पर अपने कर-कमल का स्पर्श कर पूर्ण गति का वरदान देना, लगभग 9 वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुए मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुए किसी गाँव में किसी कुम्हार के

लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। किन्तु फिर भी लोक–लीला का अनुसरण करते हुए जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन–यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमाडू से ऊपर जहाँ बागमती गंगा का उद्गम स्थान है, वहाँ से कुछ दूर चल कर किसी झारखण्ड में रह कर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदा शिव स्वरूप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया। केवल दो एक बातें बतलाई। एक नर–भक्षक जड़ी दिखलाई और कहा कि यह जड़ी नर–भक्षक है, मनुष्य को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहाँ रहो, यह कह कर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से 6–6 मील 7–7 मील की दूरी पर कोई–कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुए उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया, यह महापुरुष सदाशिव है और कई हजार वर्षों से यहाँ पर बैठे हुए हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभुजी मेरे गुरुदेव अपने मुखारविन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभु जी समाधि से उठे तब तक उनकी अपनी भी कई रोज की समाधि लग उठी थी। इसका अर्थ यही है – 'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तुछिन्नसंशयाः।' अर्थात् गुरुदेव का चुपाचुपी का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्गुरु तत्व की महत्ता है। सामर्थ्यवान् गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती उनका संकल्प ही ''कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्'' की शक्ति रखता है। मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग 12 वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के आधिव्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों को पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री कृपानिधि जी भू–मण्डल पर लौट आये। श्री गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधि–व्याधियों से पीड़ित दुःखाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में जाग उठी, अतः पुनः संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिए पवित्र योग–मार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया –

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् प्रज्ञा–प्रासाद पर आरूढ़ हुए योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुए व्यक्ति भूमि वालों को देख लिया करते हैं। ठीक इसी उदाहरण के प्रतीक बन कर मेरे श्री गुरुदेव भू–मण्डल पर आये और उन्होंने योग–प्रचार का पवित्र कार्य

प्रारम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने अवनी–मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य आरम्भ किये –

(1) योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति। इसमें भी सबसे विशेष बात यह थी, निज निर्मित साधनों का प्रचार। उनमें उनका एक प्रमुख साधन था, 'जीवन तत्व साधन' इस जीवन तत्व साधन के अन्दर नौ क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्‌भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशषता यह है कि यह लगातार विधि–विधान पूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको 'वृक' अग्नि कहते हैं। जिस प्रकार जंगली जानवर भेड़िया को हर समय भूख लगती रहती है, उसी प्रकार इन साधनों के करने से मनुष्य को हर समय भूख लगती रहती है। पेट में एक अग्नि सी धधकती मालूम पड़ती है। वह अग्नि तब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाये। इसके साथ–साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुए बच्चे का ध्यान करने की एक विधि है जिससे मन की एकाग्रता बनकर स्वाभाविक लाभ होता है और बच्चा दीखने लगता है। इस बच्चे के देखने का आह्लाद हर समय बना रहता है और उससे उसके अधिकांश रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही साथ दृढ़तर अभ्यास करने के बाद वही बच्चा श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है, और साधक का अध्यात्म में प्रवेश हो जाता है। इस साधन का नाम है जीवन तत्व साधन।

'जीवन तत्व साधन' को हमने पुस्तक के रूप में प्रकाशित करा दिया है। इसका सभी को अवलोकन करना चाहिए। इन क्रियाओं के लिए समय का विभाजन इस प्रकार रखना चाहिए :–

1 :	सर्वोत्तान	– केवल तीन बार समय केवल अधिक से अधिक दो मिनट।
2 :	स्कन्ध चालन	– समय पन्द्रह मिनट।
3 :	पादचालन	– आठ मिनट।
4 :	नाभिचालन	– पन्द्रह मिनट।
5 :	जानुप्रसार	– दोनों ओर से तीन बार समय लगभग चार मिनट।
6 :	बालमचलन	– केवल एक मिनट।
7 :	बच्चे का ध्यान	– पाँच मिनट।
8 :	नाड़ी संचालन	– पन्द्रह मिनट।
9 :	उत्क्षेपण	– केवल एक या दो मिनट।

इसी प्रकार यदि क्रियायें अधिक बढ़ानी हैं तो समय अधिक बढ़ाया जा सकता है। सभी प्रकार की बीमारियों में मेरे गुरुदेव के अपने मन से प्रकट किया हुआ यह जीवन तत्व साधन अमृत के समान परम लाभदायक है। इसमें भी बच्चे का ध्यान सब प्रकार से लोक व परलोक के लिए परम श्रेयस्कर है।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिए गुरुदेव जी ने अपने मन से अमर तत्व साधन को निकाला।

(2) अमर तत्व साधन – जिसमें केवल क्षीर समुद्र का ध्यान किया जाता है और हाथ–पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हों। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर–सागर में तैरते हुए देखने लग जाते हैं, उनका राज–यक्ष्मारोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है और उनको इतनी प्रसन्नता होती है कि उसमें उनकी समस्त बीमारियाँ भाग जाती हैं और बहुत ही थोड़े दिन के अन्दर अपने आपको पूर्ण स्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव जी यह जीवन तत्व व अमर तत्व आदि साधन ही लोक–हितार्थ कराया करते थे, किंतु कुछ समय बाद नेती, धौति, न्यौली, बस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध, मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा काम उन्होंने संसार में आकर किया।

(3) शक्तिपात दीक्षा – जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है, सिद्धयोग और साधन योग। साधन योग में मनुष्य साधन करता–करता शनैः–शनैः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और सिद्ध योग में सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं प्राप्त कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सद्गुरु सिद्ध योगिराज ही हो सकते हैं और वही लोग शक्ति संचार भी कर सकते हैं। इस 'सिद्धयोग' का प्रारम्भ भगवान् सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घन–घोर जंगलों में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है, जिसमें भगवान् सदाशिव के शिष्य–प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते हैं, यह सभी लोग महासिद्ध हैं और समय–समय पर संसार में व्यस्त गृहस्थ जनों को सन्मार्ग–दर्शन के लिए संसार में आया करते हैं। यह लोग सर्व समर्थ महापुरुष हैं। यही लोग शक्ति संचार कर सकते हैं। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सबकी तरह एक अनादि महासिद्ध हैं। उन्होंने संसार में आकर शक्ति पात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनके कृपा–फल को प्राप्त कर कितने ही सैकड़ों की संख्या में साधु जंगलों में समाधि लगा रहे हैं, और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते हैं। कितने ही साधु षट्चक्रों का भेदन करके लोक–लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये और स्वायत्ततनु होकर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे हैं। मेरे गुरुदेव योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन् 1914 के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते हैं या जो इस पवित्र योग–मार्ग के जिज्ञासु हैं उनको पवित्र योग–मार्ग का अनुयायी बनाकर चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना, हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके अपने संकल्प

से ही उनके कुटुम्बी जनों ने उन्हें पहिचाना और साधारण चर्चाओं में ही तर्क वितर्क करने लगे कि महाराज जी आप कहीं पर किसी स्थिति में रहें, अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई! हम साधू हैं तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना चाहिए। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किंतु वे लोग नहीं बदले। आग्रह करते ही रहे। इसी बीच में उन्होंने आश्चर्य देखा कि उनसे बात करते–करते ही श्री गुरुदेव जी वहीं अन्तर्धान हो गये। वह लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नहीं कर सके। अपनी हठ–धर्मी का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान् दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो गया कि यह हमारे कुटुम्बी भाई बन्धु ही नहीं हैं किन्तु कोई सामर्थ्य वान् परम योगिराज हैं। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अत्यन्त विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभु जी वहीं प्रकट हो गये किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को यह लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई 15–16 साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होगा, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुए सर्व समर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्करा कर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो? किसका अन्वेषण कर रहे हो? उन लोगों ने कहा, ब्रह्मचारी जी! हमारे एक भाई साधू रूप में अभी–अभी यहाँ थे, किन्तु पता नहीं कहाँ चले गये हैं? हमने उनके साथ बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें भारी पश्चाताप है। जब वह लोग यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, प्रत्युत योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज हैं। इस अद्भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बी जनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवल मात्र हमारे कुटुम्बी ही नहीं हैं, किन्तु इस आकृति में छिपे हुए कोई सर्वसमर्थ योगिराज हैं उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में कोई हठ नहीं की और अपने–अपने घरों को लौट गये। कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया श्री प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा थी ही इसलिए वह हिमालय से उठकर के आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ जाकर कुछ समय के लिए पण्डित वेष में रहने लगे। यह श्री प्रभु जी का गृहस्थ वेष था। इस वेष में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वन की बात किया करते थे सुनने वाले समझते थे कि इतने घनघोर जंगलों में सम्भवतः नहीं गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हाल दरवाजे से बाहर एक सराय है, जिसको सन्तराम की सराय कहते हैं। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुख–मण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिल्कुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे। सारे शहर में उनकी प्रख्याति फैल गई। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में जाकर गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की श्री महाराज जी! आप बड़े–बड़े जंगलों में हो आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्ध योगिराज जी नहीं मिले होंगे जैसे महात्मा सन्तराम की सराय

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः ।।

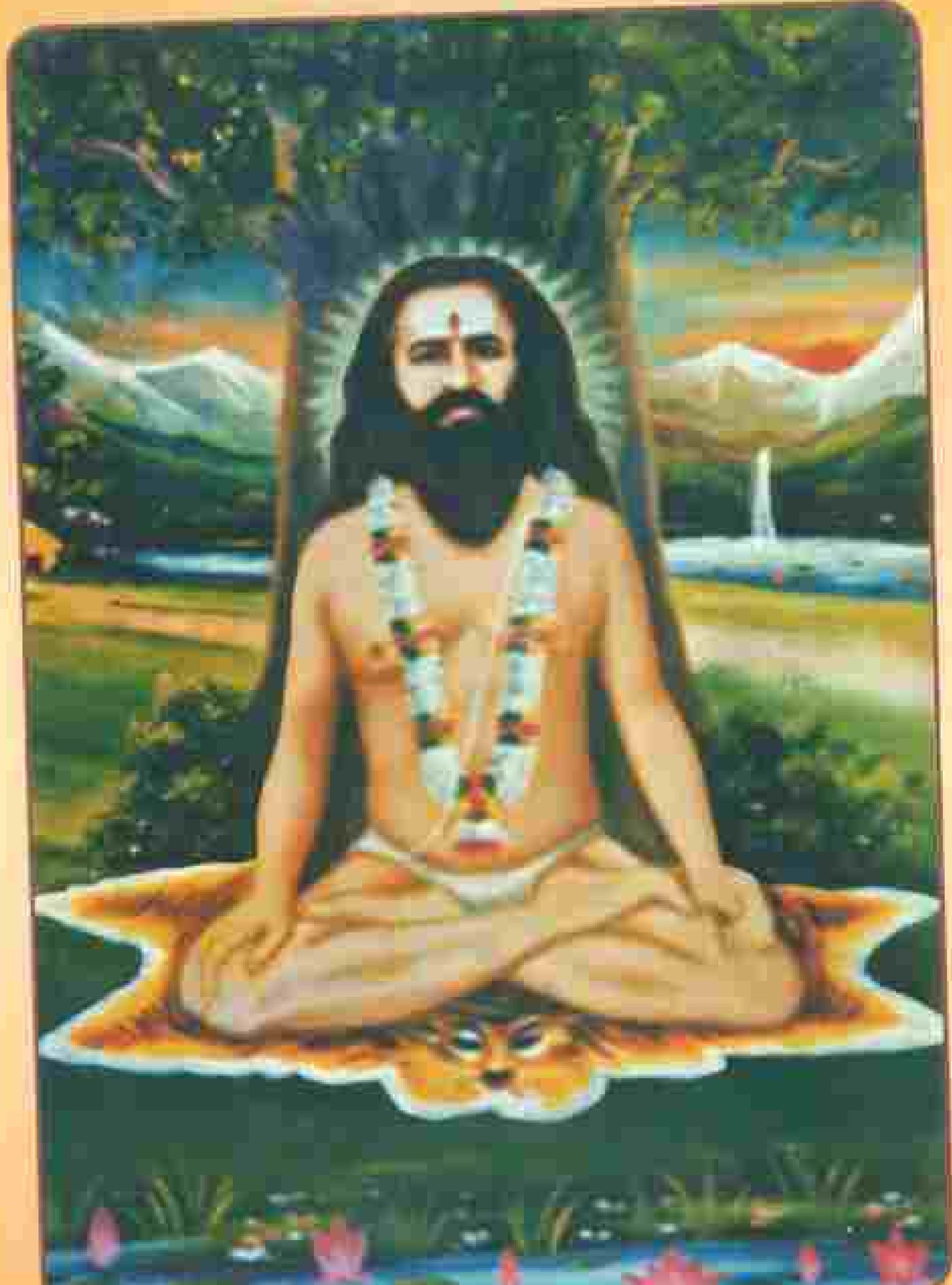

श्री श्री 1008 योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

में आकर बैठे हैं? वह तीन दिन से बिल्कुल निराहार हैं और पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठे हैं, न हिले हैं न डुले हैं। चलिए आपको भी उनके दर्शन करा लावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया, भाई! हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब तीन रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो हैं ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्य चकित हो जावेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज है। किन्तु बात कुछ और ही थी। श्री प्रभु जी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्तराम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुए थे, धीरे-से उनके पीछे जाकर खड़े हो गये। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ के पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में एक कम्प पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राण-कोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा सचेत होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभुजी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभुजी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा – बेटा! रोते क्यों हो? मैंने ही तुमको शतपथ से बुलाया है तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जायेगी और तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जायेगी। आकाश-गमन आदि सब ठीक हो जायेगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभुजी से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। प्रभो! हे सर्वशक्तिमान् ! मेरे रोने का केवल एक ही कारण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मैं तड़पता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए, किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिए नहीं आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं मेरे कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्द्रष्टा श्री प्रभुजी ! आपने मुझे आकर कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकर हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे, उनके आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वह लोग भली प्रकार जान गये, इस विप्र वेष में छिपे यह अवश्य कोई सर्वसमर्थ महापुरुष है। यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्व साधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ-कुछ समझने लगे। यहाँ से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य आरम्भ हुआ। मेरे गुरुदेव ने इस बीच में क्या-क्या कार्य किया, वह शनैः-शनैः इस पत्र में प्रकाशित होता रहेगा जिससे पाठकगण समझते रहें कि सद्गुरुदेव कौन होता है और उनके कार्य किस प्रकार के हुआ करते हैं।

परम गुरुदेव योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

– योगाचार्य डॉ. रामलाल ब्रह्मचारी

ईश्वर की भांति महायोगेश्वरों का भी जन्म व कर्म दिव्य होता है। इस दिव्यता को जो जानता व समझता है वह भी दिव्य हो जाता है तथा मुक्त हो जाता है। किंतु जन्म कर्म के इन रहस्यों को हर व्यक्ति जान नहीं सकता। दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगीजन ही इन रहस्यों को जानते हैं। योग अमर व अमृत विद्या है, इसी विद्या से मनुष्य बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस विद्या का समय-समय पर भगवान स्वयं प्रसार करते हैं या इनके ही रूप में योगेश्वर सिद्धयोगी भारत भूमि में विद्यमान रहकर प्रचार-प्रसार करते हैं। मध्य काल के भगवान मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि महासिद्धों ने योग विद्या को प्रचारित कर मानव को परम कल्याण की ओर लगाया है। ऐसे अनादि सिद्ध, कल्पनान्तजीवी, योगदेह से नित्य हिमालय में वास करने वाले परम कारुणिक सिद्ध महापुरुष श्री रामलाल जी महाराज का नाम विख्यात है। आप अपने भक्तों में साक्षात् महेश्वर के रूप में पूजित हैं। आप योगियों के भी योगी सद्गुरु हैं तथा भक्तों की हर अभिलाषा को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष हैं।

आपके विषय में बहुत समय पूर्व ही 'काकनाड़ी संहिता' में आपके योगावतार की भविष्यवाणी की गयी है। आपका परम पावन प्राकट्य गुरुओं की पावन नगरी अमृतसर में विक्रमी संवत् 1845 को चैत्र शुक्ला नवमी वृहस्पतिवार को वृष लग्न में स्वनामधन्य प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् पंडित गंडाराम जी महाराज के यहाँ हुआ। आपकी माता का पवित्र नाम भागवन्ती देवी था। ब्राह्मणों में सारस्वत वंश प्रसिद्ध वंश है। इसी में जोशी वंश में पण्डित साँईदत्त जी हुए। आप बाल्यकाल से ही भगवत्प्रेमी, परम सदाचारी, आस्तिक व आध्यात्मिक विचारों के थे। बचपन में कई बार कई-कई महिनों तक एकान्तवास व अनुष्ठानों में लगे रहते थे। कठोर तप व स्वाध्याय के फलस्वरूप आप में अलौकिक शक्तियों का प्रादुर्भाव हो गया। अपने संकल्प मात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्जवलित कर देना, वर्षा कर देना आदि-आदि विभूतियाँ आप में सहज रूप में प्रकट रहने लगी।

आगे आपके दो पुत्र पण्डित कन्हैयालाल व पण्डित सुखदयाल जी हुए। पण्डित सुखदयाल जी बहुत ही दयालु व विद्वान पुरुष थे। इन्हीं परम भागवत पुण्यशील भक्त के यहाँ एक पुत्र ने जन्म लिया, जिनका पावन नाम 'गण्डाराम' रखा गया। आप पंजाब प्रान्त के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी के रूप में विख्यात हुए। आप बड़े तेजस्वी महापुरुष थे, जिनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी थी। आपकी तपस्या व साधना का परम सुफल यह रहा कि आपके यहाँ भगवान ने महाप्रभु के

रूप में प्रकट होकर वंश को प्रकाशित किया और मानवमात्र का उद्धार किया। सदैव मुक्त, नित्यसिद्ध होते हुए भी वे अपने संस्कारी बच्चों के दुःखद्वन्द्व व ताप को देखकर दयार्द्र होकर नाना शरीर अपनी इच्छा से धारण करते रहते हैं। पिताश्री ने आपका पावन नाम 'रामलाल' रखा। चार अक्षरवाला यह नाम धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष को प्रदान करने वाला है। नित्य कूटस्थ, आत्मस्वरूप में स्थित रहने वाले महायोगी दया से अभिभूत होकर योगी सद्गुरु के रूप में प्रकट होकर दुःख निवृत्ति के एकान्तिक उपाय योग का ज्ञान देते हैं। आपकी शैशवकालीन लीलायें भी परम अलौकिक रहीं। आपके अद्‌भुत सामर्थ्य को देखकर एक अवतारी के रूप में आपकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। पाँच वर्ष की आयु में पिताश्री ने पाठशाला में प्रवेश दिलाया। जिनके श्वाँसों में चारों वेद का ज्ञान समाया हुआ हो उसे अध्यापक भला क्या पढ़ायेगा? अध्यापक भी आपकी अलौकिक प्रतिभा से आश्चर्य चकित थे। संस्कृत अध्ययन के बहाने से आप चौदह वर्ष की अल्पायु में गृह त्याग कर निकल पड़े। सर्वप्रथम आप कुरुक्षेत्र पहुँचे, वहाँ विद्याध्ययन करने लगे।

एक दिन एक छात्र ने एक चमत्कार देखा। एक भयंकर सर्प अपना फन फैलाये आपके ऊपर छाया किये हुए है। उस छात्र ने भय और आश्चर्य से युक्त होकर इसकी जानकारी अपने साथियों को दी। सभी इस अद्‌भुत घटना को देखने के लिए एकत्रित हो गये। उन लोगों के वहाँ पहुँचने तक वह सर्प अदृश्य हो चुका था। श्री प्रभुजी निश्चिन्त होकर विश्राम कर रहे थे। इस घटना की चर्चा सर्वत्र फैल गयी। कुछ दिन वहाँ रहने के पश्चात् श्री प्रभुजी हरिद्वार चले गये। कनखल में कुछ समय व्यतीत करने के पश्चात् वे काशी चले गये। उन दिनों काशी के समाज में तन्त्र के बल पर अनाचार होता था। 'भैरवी चक्र' जैसे तांत्रिक प्रयोगों से स्त्री–पुरुष को स्तम्भित कर दिया जाता था। प्रभु जी ने ऐसे अनाचार एवं तन्त्र प्रयोगों को अपने योग बल से समाप्त कर दिया और इस प्रकार की कुप्रथा सदा के लिए मिटा दी गयी। आप पर भी कई तांत्रिक प्रयोग हुए किंतु सब निष्फल रहे। तीर्थयात्रा करते–करते आप श्रीवृन्दावनधाम आये। वहाँ समस्त बृज क्षेत्र के दर्शनीय स्थलों का भ्रमण करते हुए दाऊजी होते हुए प्रभुजी आगरा जिले में बरहन पहुँच गये। बरहन में आपके दिव्य रूप एवं योग विभूतियों से प्रभावित होकर कई लोग उनके अनन्य भक्त बन गये। आपके पास आने से ही दुःखी जनों की आधिव्याधि मिट जाती। जिसके लिए जैसा कहते वैसा ही हो जाता था। वहाँ से वे सवाँई गाँव आये। गाँव में ला. प्यारेलाल आदि बहुत से आपके भक्त बन गये।

अब श्री प्रभुजी के पास लोगों की भीड़भाड़ रहने लगी। वे गाँव के बाहर निवास करते थे। ग्रामवासियों ने इनके लिए एक गुफा का निर्माण कर दिया, जहाँ वे निर्विघ्नतया समाधि में बैठ सकें। यहाँ श्री प्रभुजी दो–ढाई वर्ष तक रहे। अब इनकी इच्छा नेपाल हिमालय जाने की हुई। इनके भावों को समझते हुए भक्तों ने प्रार्थना की– 'प्रभो! आप हिमालय जाने का विचार त्याग दें। हम आपके बिना अनाथ हो जायेंगे।' श्री प्रभुजी ने कहा – 'हिमालय तो हम जायेंगे ही।'

एक दिन प्रातःकाल की बेला में चार बजे गुफा से सूक्ष्म रूप से अणिमा सिद्धि के द्वारा बाहर निकल कर आकाश मार्ग से जाने लगे। गुफा का दरवाजा बाहर से बन्द था और वहाँ भक्तजन बैठे हुए थे। आकाश मार्ग से जाते हुए उन्हें ग्राम के एक किसान ने देख लिया। श्री प्रभुजी

ने उसे अभयमुद्रा में आशीर्वाद देते हुए कहा — ''हम गुफा वाले बाबा है। नेपाल हिमालय को जा रहे हैं।'' किसान ने गुफा पर आकर सभी को इसकी जानकारी दी। सत्यता जानकर सभी अत्यन्त दुःखी हो गये। श्री प्रभुजी की आकाशवाणी हुई — 'चिन्ता मत करो, दस–बारह वर्ष बाद फिर आयेंगे।' आप हिमालय में अपने गुरुदेव सदाशिव के पास कई वर्ष रहे। उन्हें उनकी आज्ञा हुई — ''पृथ्वी मण्डल पर जाओ, हमारे बहुत से संस्कारी तुम्हारे द्वारा योगमार्ग में आकर ब्रह्मभाव को पाकर मेरी चिति शक्ति में समा जायेंगे।''

अपने गुरुदेव सदाशिव की आज्ञा मानकर श्री प्रभुजी अवनि मण्डल पर आ गये। अमर विद्या योग के प्रचार–प्रसार के लिए आपने कई आश्रमों की स्थापना की। सन् 1921–22 में ऋषिकेश में योग साधन आश्रम की स्थापना की। आपने बीमार व्यक्तियों के लिए अपने मन से कुछ क्रियायें उद्घाटित की जो 'जीवन तत्व साधन' के नाम से भारत में प्रचारित हुई। आपने लाहौर में, अमृतसर मे तथा अन्य कई स्थानों पर आश्रम स्थापित किये। अधिकारी योग जिज्ञासुओं को शक्तिपात की क्रिया से कुण्डलिनी जागरण तथा अन्य रहस्यमय क्रियायें आपके संकल्प मात्र से होने लगीं। यही परम्परा 'सिद्धयोग' की परम्परा कहलाती है। इस परम्परा में सिद्धयोगी गुरु की इच्छा से साधक के अन्दर विभिन्न अद्‌भुत क्रियायें स्वतः ही होने लगती हैं।

आपके मुख्य शिष्यों में योगीराज मुल्खराज जी महाराज, ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज, सद्‌गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं योगी नृसिंहमूर्ति जी थे। प्रधान शिष्याओं में महात्मा ऋषिदेवी जी तथा माता द्रोपदी देवी प्रमुख हुई। ये सभी महान शक्तिसम्पन्न सिद्धयोगी हुए। इनमें सद्‌गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने आध्यात्म योग का बहुत प्रचार किया। लाखों साधक ध्यान योग की दीक्षा पाकर योग ध्यान में आरूढ़ होकर योग के परम लक्ष्य की ओर बढ़ रहे है। श्री प्रभुजी की परम्परा के शिष्य–प्रशिष्य देश विदेश में योग का खूब प्रचार कर रहे हैं। अपने योग जगत को बहुत कुछ दिया, योग समाज आप जैसे महायोगी के दिव्य जीवन पर गर्व अनुभव करता है।

शक्ति का पर्याय योग है। सच्चे अर्थों में यदि योग को आत्मसात् कर लिया जाये तो जीवन दिव्य बन जाता है। योग की अद्‌भुत क्रियायें तन मन को शुद्ध व पवित्र करती हैं और योगी आत्म साक्षात्कार का अधिकारी बनता है। सिद्धयोग परम्परा में साधक सद्‌गुरु कृपा से अद्‌भुत क्रियाओं को स्वयमेव करने लगता है। गुरु की अव्यक्त शक्ति से सभी गुप्त क्रियायें होती हैं। श्री प्रभुजी ने अधम प्राणियों को भी तारा है और वे ही कालान्तर में अन्यों को तारने वाले हो जाते हैं। कहा है एक भक्त कवि ने — ***यस्य प्रसादात पतितासुपावना भवन्ति संसार सुतारणा शिवा*** अर्थात् महाप्रभु जी की कृपा से पतित भी पावन बन जाता है। वह दुनिया का तारण हार हो जाता है ऐसी है महाप्रभु की करूणा कृपा। जहाँ–जहाँ भी यह विराजमान हो जाते हैं वहाँ दिव्यता आ जाती है ऐसे में प्रभु के चिन्तन, आराधना करने वाले कल्याण पथ पर आरूढ़ हो जाते हैं। आपने अपने योग साधकों को योग का वास्तविक स्वरूप समझाया है तथा निरंतर ध्यान योग के अभ्यास करते रहने की आज्ञा व प्रेरणा दी है। परम गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज सद्‌गुरु के रूप में सदा प्रकट रहकर

शिष्यों के हृदयस्थ अज्ञान ग्रन्थि का भेदन करते हैं। गुरुगीता का निम्न श्लोक दृष्टव्य है–

सच्चिदानंद रूपाय व्यापिने परमात्मने।

नमः श्री गुरुनाथाय ह्यविद्याग्रन्थि भेदिने।।

अर्थात् श्री गुरुनाथ को प्रणाम करते हैं, जो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, सर्वव्यापक हैं, परमात्मा हैं, जो अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं। महाप्रभु सद्प्रभु रूप में इसी प्रकार से शिष्यों के हृदयग्रन्थि का भेदन करते हैं। आनन्दकन्द करुणा वरूणालय महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का 124वाँ प्राकट्य दिवस श्री सिद्धगुफा सवाँई धाम में 30, 31 मार्च एवं 1 अप्रैल को धूमधाम से मनाया जा रहा है। भारत व विदेश में जहाँ–जहाँ उनके भक्त व शिष्य हैं, श्री प्रभुजी का यह परम महोत्सव धूमधाम से मना रहे हैं।

महाप्रभु जी योगियों के नभमण्डल में देदिप्यमान सूर्य के समान हैं। भारत के उत्तर, पश्चिम, पूर्व, दक्षिण सभी दिशाओं में उनके भक्त फैले हुए हैं और उनकी महिमा का गान कर रहे हैं।

उन्हें एक महान अमर सिद्धयोगी के रूप में ईश्वर के रूप में, सद्गुरु के रूप में पूजने वाले हैं। अपने भक्तों की रक्षा के लिए सर्वत्र प्रकट हो जाते हैं। लुप्त योग विद्या का प्रकाशन अपने संस्कारी व अधिकारी बच्चों में कर रहे हैं। योग विद्या के साक्षात् स्वरूप हैं इसीलिए भक्त ***''नमो योग रूपम् नमो ब्रह्मरूपम्''*** कह कर याद करते हैं। वे करुणा निकेतन हैं सदा अपने भक्तों पर / बच्चों पर कृपा ही करते हैं। उनके 124वें प्राकट्य दिवस राम नवमी के पावन अवसर पर उनके चरण कमलों में सभी बच्चे कोटि–कोटि नमन करते हैं।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्।

आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः।।

धर्म, अर्थ तथा विविध सुखों का साधनभूत – दीर्घजीवन चाहने वाले को आरोग्यशास्त्र के (आहार-विहार एवं आचार-विचार-सम्बन्धी) उपदेशों का विशेष आदर (तदनुरूप आचरण) करना चाहिए।

अखिल ब्रह्माण्ड नायक

प्रभु श्री रामलाल जी भगवान एवं उनका योगेश्वर्य!

– अनिल कुमार सिंह (कुंवर), कछवा, मीरजापुर

आनन्दकन्द प्रातः स्मरणीय परम सद्गुरुदेव जी महाराज एक दिन सायंकाल अखिल ब्रह्माण्ड नायक जगतनियन्ता परम श्री प्रभुजी के चरण कमलों के साथ ऋषिकेश आश्रम से गंगा तट पर घूमने गये। वहाँ त्रिवेणी घाट से आगे एक निर्मल स्वच्छ चट्टान पर एक महात्मा ध्यान में बैठे हुए थे। परम आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को बड़े गौर से देखा और फिर आगे की ओर घूमने के विचार से चल पड़े। साथ में उस समय श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के सभी गुरु–भाई–बहनों को बड़ा ही आश्चर्य था कि श्री प्रभु जी इस प्रकार किसी की ओर नहीं देखते हैं तो इस महात्मा की ओर क्यों देखा? इधर–उधर झाड़ियों तक घूम घाम कर श्री प्रभुजी के साथ सभी लोग आश्रम लौट आये और वहाँ आकर श्री चरणों में प्रार्थना की कि श्री प्रभुजी यह महात्मा कौन था, जिसकी ओर गंगा तट पर आपने इतनी गौर से देखा था, किन्तु श्री प्रभु जी ने यथार्थ उत्तर नहीं दिया और कह कर टाल दिया अरे! कौन था, क्या था से क्या मतलब! साधु था बेचारा, भजन कर रहा था, देख लिया तो क्या पाप कर दिया, इतना कहकर श्री कृपानिधान प्रभुजी ने सभी को चुप कर दिया।

किन्तु पुनः दूसरे दिन फिर आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव भगवान को साथ लेकर करुणानिधान श्री प्रभुजी शाम को गंगातट पर घूमने निकले और कहा कि श्री प्रभुजी आज मुनी की रेती की तरफ चलें और कैलाश आश्रम वगैरह देखकर लौट आवेंगे। किन्तु परम योगेश्वर श्री प्रभुजी ने किसी की भी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया और कहने लगे कि अरे भाई आज तो देरी हो गई है, कैलाश आश्रम तो यहाँ से दूर है, अब तो चलो त्रिवेणी गंगा घाट तक ही घूम आवेंगे। श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार श्री सद्गुरुदेव भगवान एवं उनके साथ भाई–बहन श्री प्रभुजी के चरण विन्द के साथ त्रिवेणी घाट की ओर चल पड़े किन्तु त्रिवेणी घाट पर श्री प्रभुजी एक मिनट भी नहीं ठहरे प्रत्युत खुरजे वालों की धर्मशाला के बीच से होते हुए उसी पहले दिन वाली जगह जहाँ वह महात्मा ध्यान में बैठा था गए एवं क्षणभर उसकी ओर देखकर पुनः वापिस आ गए। पुनः कहने लगे चलो वापिस आश्रम लौट चलें अब देर हो गई है। श्री कृपा सागर जी की आज्ञा शिरोधार्य कर सभी श्री सद्गुरुदेव जी के साथ वापस आ गए। किन्तु दूसरे दिन श्री सद्गुरुदेव भगवान ने महान आश्चर्य देखा कि वही गंगा तट वाला साधु लम्बी–लम्बी दण्डवत प्रणाम करता हुआ श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में आश्रम पहुँचा और श्री चरणों में लिपट करके अपनी अनुभूति सुनाई। उस साधु ने बताया कि परसों मैंने आपको अपने पास खड़े देखा था और आप इतने तेज में थे, मैं उस तेज को सह नहीं सका, फिर आपने अपना हाथ उठाया, उस

हाथ से तेज की धारा निकली और वह तेज मेरे शरीर में विलीन हो गया उसी क्षण से मैं अपने इष्टदेव भगवान श्री कृष्णचन्द्र को पल–पल खुली एवं बन्द आँखों से देख रहा हूँ, पहले तो केवल मंत्र जाप करता था और भगवान का मानस–पूजन किया करता था, अब मैं मानस–पूजन की चेष्टा तो करता हूँ किन्तु मैं कुछ भी नहीं कर पाता किन्तु उनके दिव्य दर्शन प्रारम्भ हो जाते हैं। हर समय रास–लीला के दिव्य दर्शन होते रहते हैं।''ध्यान में आपके रूप, तेज, ऐश्वर्य को देखकर कि देखने में तो यह पगड़ीधारी पण्डित जैसे दिखलाई देते हैं, पता नहीं इस वेश में छुपे हुए कौन हैं, जिसमें तेज का कोई आदि अन्त ही दिखाई नहीं देता।'' किन्तु आप कहाँ रहते हैं मेरे मन में यह तीव्रतम लालसा बनी कि मैं किसी प्रकार आपके स्थूल रूप दर्शन प्राप्त करूँ। मन में बड़ी–बड़ी तड़प लग गई कि ये कौन हैं? कहाँ रहते हैं? और कब मिलेंगे? बस तो फिर कल शाम को मुझे ऐसा दिखलाई दिया कि आप मेरे नजदीक तक आये और वापिस चले गये, आपके साथ काफी भाई–बहन भी थे। मुझे आपने आवाज भी दी कि अच्छा अब तू भी चला आ।' किन्तु जब मेरी आँखें खुली तो वहाँ कोई भी नहीं था, फिर मैं आश्चर्य में पड़ गया कि अब मैं क्या करूँ? किन्तु आज प्रातःकाल जब उसी शिला पर ध्यान में बैठा तो मेरी आँखों के सामने एक तेज की धारा बन गई और वही तेज की धारा रास्ता बनी हुई दिखाई पड़ी और एक आवाज आई इसी रास्ते पर चला आ और उसी तेज पर आश्रम का पूरा रूपक दिखाई पड़ा और आपके चरण कमल भी। और उसी तेज के सहारे मैं आपके चरण कमल तक पहुँचा हूँ और मुझे अब अपनी चरण–शरण में लीजिए। किन्तु श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि 'अरे भाई! शरण में तो तू पहले से ही लिया हुआ है और क्या शरण में लेंगे? किन्तु बार–बार प्रार्थना करने पर परम आनन्द कन्द श्री प्रभुजी ने योगोपदेश दे दिया और अपनी शरण में रख लिया। आश्रम में रहने पर उसकी साधना दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी और धीरे–धीरे तुरीय स्थिति की ओर बढ़ने लगा और दिन–रात सोते जागते ध्यान मग्न ही रहने लगा। इस प्रकार उस महात्मा की उन्नत स्थिति देखकर परम अखिल ब्रह्माण्ड नायक अपने श्री सद्गुरुदेव जी महाराज को एक शंका बनी रहने लगी और वह यह कि 'परम आनन्दकन्द अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्री प्रभुजी जिसको देख लेते हैं या जिसे दीक्षा देकर अपना लेते हैं उसी पर कृपा करते हैं या कहीं पर बिना देखे भी ऐसी कृपाएँ करते हैं? इस पर परम सद्गुरुदेव श्री भगवान ने पूर्ण परात्पर श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में प्रार्थना निवेदित की कि 'श्री प्रभु जी आप कृपा करके मुझे यह बतलाइए कि ऐसी कृपा आप कहीं इधर–उधर बैठे साधुओं पर भी करते हैं या जिस किसी को देख लेते हैं या शरण में ले लेते हैं उसी पर कृपा करते हैं। तब जगतनियन्ता सर्वान्तर्यामी श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया अरे बेटा! वह शक्तिमान सभी जगह सभी कृपाएँ करते हैं जो जितना अधिकारी है उतना उसको मिलता ही मिलता है। किन्तु श्री सद्गुरुदेव भगवान जी के मन में यह भ्रान्ति बनी ही रही और श्री प्रभुजी के चरणों में ऐसी बातें बार–बार करते ही रहे और उसी समय श्री महाराज जी वृन्दावन धाम भी जाने की भावना को भी व्यक्त करते रहे। तब श्री प्रभुजी ने श्री

महाराज के आग्रह को स्वीकार करते हुए आज्ञा दी कि बेटा अब तू वृन्दावन चला जा, तेरी बातों का जवाब तुम्हें वहीं मिलेगा, श्री प्रभुजी की आज्ञा शिरोधार्य कर श्री सद्गुरुदेव भगवान जी वृन्दावन चले आये एवं प्रेममग्न होकर रहने लगे।

वृन्दावन प्रवास के दौरान श्री सद्गुरुदेव भगवान की लालसा थी कि बरसाने की होली देखूँ और तीव्रतम भावनाएँ बन गई कि बरसाने–नन्दगाँव की होली जरूर देखूँ। किन्तु इसी बीच पर परमप्रभुजी का पत्र मिला कि जिसमें लिखा था कि बेटा तुम पत्र पाने के बाद होलियों के पहले – पहले आश्रम ऋषिकेश अवश्य–अवश्य आ जाना। यद्यपि अभी होली 20–25 दिन बाद थी। किन्तु यद्यपि होली देखने की दृढ़ भावना थी किन्तु परम आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का पत्र पाने पर श्री महाराज जी ने ऋषिकेश जाने का निश्चय कर लिया। इसी क्रम में एक दिन ध्यान काल में एक दिव्यानुभूति हुई। श्री सद्गुरु देव भगवान ने देखा कि गौरवर्ण के दो लड़के भगवान श्री कृष्ण के प्रेम में बिलख रहे हैं और बरसाने की सांकरी कोट की पहाड़ी पर ये गहवर वन में घूम रहे हैं। उन दोनों लड़कों को रोते देखकर आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने ध्यान में ही श्री सद्गुरुदेव भगवान को आज्ञा दी कि बेटा ये दोनों प्यासे हैं और हमारे बच्चे हैं, इन दोनों को तू गहवर वन में जाकर पानी पिला आ। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की आज्ञा पाकर श्री महाराज जी अपनी कमण्डल पानी से भरकर गहवर वन की ओर चल दिए। वहाँ जाकर गहवर वन में काफी ढूंढे परंतु वे दोनों नहीं मिले। किन्तु सांकरी कोट की पहाड़ी पर जब गये वहाँ श्री हंसदास जी महात्मा रहते थे उनसे पूछा तो वे बताएं कि हाँ एक दो दिन पहले दो बालक दिखाई पड़े थे दोनों प्रेमी मालूम पड़ते थे। इसी तरह श्री महाराज जी उन दोनों लड़कों को तलाश करने के बाद पुनः प्रेम सरोवर श्री राधा–कृष्ण जी के मन्दिर में आ गये और रात को ध्यान में बैठे तो देखा कि उन दोनों लड़कों में से एक लड़का जो बहुत ज्यादा रो रहा था उसको श्री प्रभुजी कण्ठ से लगा रहे हैं सिर पर हाथ रख रहे हैं और आज्ञा दे रहे हैं कि अच्छा अब तू कामवन चला जा। श्री महाराज जी को दिखाई पड़ा कि वह लड़का कामवन चला गया और दूसरा श्री वृन्दावन चला गया है। तब श्री महाराज जी बरसाने से चलकर श्री वृन्दावन आ गए। यद्यपि श्री महाराज जी ने देखा कि वह लड़का वृन्दावन में बिहारी जी के मन्दिर में खड़ा है और श्री बिहारी जी को देखकर के आँखें मल–मल कर रो रहा है और मन में संकल्प कर रहा है कि या तो श्री बिहारी जी दर्शन दे दें अन्यथा मैं अपने प्राण गँवा दूंगा। जब यह बहुत ही बिलख–बिलख कर रो रहा था तो श्री महाराज जी ने ध्यान में देखा कि ऋषिकेश में आराम कुर्सी पर विराजमान परब्रह्म पुरुषोत्तम आनन्दकन्द श्री प्रभुजी इसकी ओर देख रहे हैं और साथ ही अपना हाथ उठाया और उस लड़के के सिर की तरफ कर दिया। तब श्री महाराज जी ने देखा कि आनन्द कन्द श्री प्रभु जी के हाथ से एक दिव्य तेज की धारा निकली और वह बहुत से वन, जंगल व नगरों को पार करती हुई श्री वृन्दावन में श्री बिहारी जी के मन्दिर में बाई और ऊपर के चबूतरे पर जो लकड़ियों का बना है, वहाँ वह लड़का खड़ा हो बिलख रहा है, श्री प्रभुजी के हाथ से निकला हुआ वह तेज

उसके सिर में विलीन हो गया, उसके सिर में विलीन होते ही उसको श्री बिहारी जी के साक्षात् दर्शन हुए. श्री बिहारी जी ने उसको आज्ञा दी कि जाओ अब तुम पर कृपा हो गई तुम निधिवन चले जाओ। उपर्युक्त ये सारी बातें आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव भगवान ने ध्यान में देखी। किन्तु श्री महाराज जी उस लड़के से मिलने को काफी व्यग्र थे लगातार कई दिन श्री बिहारी जी के मन्दिर में गये। किन्तु एक दिन अकस्मात् वह लड़का श्री बिहारी जी के मन्दिर में श्री महाराज जी से मिल गया। तब श्री महाराज जी ने उस बालक से मिलकर पूछा कि भई यह बतलाओ कि दो दिन पहले तुम श्री बिहारी जी के मन्दिर में अमुक जगह खड़े थे और तुम्हारे साथ गहवर वन में एक साथी और था आदि सभी बातें जो श्री महाराज जी ने ध्यान में देखा था, सब बातें उस लड़के से पूछी। तो वह लड़का बड़ा ही आश्चर्य में पड़ गया और कहने लगा सब बातें मैं बाद में बताऊंगा पहले आप यह बताइए कि आप को इन सब बातों का ज्ञान कैसे है। तब श्री महाराज जी ने उससे कहा कि 'भई मैं तुम्हें सब बातें बतला दूंगा कि किस प्रकार से तुम पर कृपा हुई और किस प्रकार से तुम्हारे साथी पर कृपा हुई। किन्तु उससे पहले तुम स्वयं मुझे बताओ कि तुम्हारे एवं तुम्हारे साथी के साथ क्या-क्या घटना घटित हुई? इस प्रकार उस लड़के ने सारी बातें बोलकर घटित घटना को सुनाया कि मैं एवं मेरा साथी भगवान के प्रेम में व्याकुल रहता था मेरा व उसका साथ ही श्री वृन्दावन आने का विचार हुआ किन्तु एक दिन उसने कहा कि तुम श्री वृन्दावन चले जाओ मुझ पर भगवान श्री कृष्ण की सुन्दर कृपा हुई है और मुझे कामवन जाने की आज्ञा हुई है। अतः मैं कामवन जाऊंगा और तुम श्री वृन्दावन जाओ और उसके कहने पर मैं श्री वृन्दावन चला आया और एक बड़ा गहरा दुःख जैसा हो रहा था कि श्री श्यामसुन्दर ने मेरे मित्र को दर्शन दे दिये मुझे क्यों नहीं? इसी दुःख से दुःखित होकर मैं इतना पापी हूँ इस शरीर को रखकर क्या करूंगा? यह निश्चय कर लिया कि श्री वृन्दावन मन्दिर में चलूँ और आँखें भर कर श्री बिहारी जी का दर्शन कर लूं उसके बाद यमुना जी में जाकर कूद कर प्राण गवां दूंगा। यह पक्का इरादा करके मैं श्री बिहारी जी का दर्शन ऊपर की गैलरी में खड़ा होकर कर रहा था। इसी अवस्था में अचानक मुझे मालूम पड़ा कि मेरे सिर पर किसी ने अपना हाथ रखा एवं हाथ रखने के साथ आवाज दी कि सामने देख और श्री बिहारी जी के दर्शन कर, क्यों मरता है? इसी आवाज के साथ श्री बिहारी जी के साक्षात् दर्शन होने लगे और बिहारी जी ने मुझे आज्ञा दी जाओ तुम पर कृपा हो गई अब तुम निधिवन चले जाओ। आज 3 दिन 3 रात मैं निधिवन में भगवान की दिव्य लीलाओं का दर्शन प्राप्त करता रहा आज अकस्मात् मैं श्री बिहारी जी के दर्शन करने आया तो आप से अचानक मुलाकात हुई एवं ऐसी बातें हुई। तो उस लड़के ने श्री सद्गुरुदेव भगवान से कहा कि आपके मुख से ऐसा सुनकर बड़ा ही आश्चर्य लगा एवं अब आप कृपा कर बतलाइये कि हम पर यह कृपा कैसे और किसने की? इस पर श्री सद्गुरुदेव भगवान ने जो बरसाने में ध्यान में आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने पानी पिलाने की आज्ञा दी बतलाए एवं ऋषिकेश में बैठे-बैठे कैसे कृपा की सब बतलाई। ये सब बातें जानकर वह आनन्दकन्द श्री

प्रभुजी के दर्शन की लालसा व्यक्त की। किन्तु इतनी ही देर में वह लड़का स्वयं ही कहता है कि "प्रभुजी सफेद धोती कुर्ता एवं पगड़ी पहने हुए हैं न" श्री महाराज जी ने उत्तर दिया कि हाँ इस समय यही वेश है।

इस प्रकार की घटना के पश्चात् पहले ही श्री आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के पत्र आज्ञा के पालन में आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव भगवान ऋषिकेश आश्रम के लिए रवाना हो गए और श्री प्रभुजी के चरण कमलों में जाने पर श्री प्रभुजी ने श्री महाराज जी से पूछा कि 'बतला, वृन्दावन में जाने पर तुम्हारे मन में जो शंकाए थी उनकी निवृत्ति हुई या नहीं? इस पर आनन्दकन्द परम सद्गुरुदेव जी महाराज ने उत्तर दिया है परब्रह्म पूर्ण परात्पर श्री प्रभुजी मैं भली प्रकार से जान गया कि आप परिचित अपरिचित्त, दीक्षित एवं अदीक्षित सभी लोगों पर कहाँ और कैसे कृपा करते हैं, इन दोनों अपरिचित्त लड़कों की घटनाओं से पूरा उपदेश मिल गया कि आप सभी जगह कृपाएँ करते हैं। ऐसे अखिलात्मा जगत त्रिपावन परम पुरुष के जन्म दिवस के पावन पर्व पर उन्हीं के चरण कमल में सहस्र कोटिशः नमन्।

सुगौर वर्ण सुविशाल नयनं।
योगीवरं सिद्धसिद्धेश दिव्यम्।।
श्री भाग्यवन्तीं सुत सर्वश्रेष्ठं।
प्रभु श्री रामलालं शरणं प्रपद्ये।।
नमो योग रूपं नमो ब्रह्मरूपं।
अनन्तअकारं अभेदं अनीहम्।।
सदा बोधरूपं सकल व्याधिहरणं।
प्रभु जी रामलालं नमामि नमामि।।

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत्।।

जहाँ धनवान्, वेदज्ञ ब्राह्मण, राजा, नदी और वैद्य – ये पाँच विद्यमान न हों, ऐसे देश या स्थान में नहीं रहना चाहिए।

गुरु वन्दना

– ले. (स्व.) बनवारी लाल चतुर्वेदी, फिरोजाबाद

(1)

धनि धनि श्री गुरुदेव, जगत तुम्हरे गुण गावत।
योगी यती महेश शेष, सुरपति सिर नावत।।
तुम्हरे द्वारे आय सबै, तुअ भिक्षा मांगत।
है नर पावत वही, जाहि तुम ही अपनावत।।
है मिलबौ अति कठिन तव ज्यों तारागण गगन के।
पाय मनुज तुमको पुनः, परत जाल नहिं ठगन के।।

(2)

हिय में प्रभा–प्रकाश आपनी, सुख सरसावत।
दरसावत शुभ अशुभ, नीति निर्णय करवावत।।
पावन परम अनूप शान्ति दै, मोद मनावन।
भली भांति अज्ञान शत्रु को नास नसावन।।
ऋषि मुनी तपसी सदा, बाट तुम्हारी जोहते।
तव गुण–सिन्धु अपार है, सुजन हृदय अति मोहते।।

(3)

जगहित कारण ज्ञान–सिन्धु सन्मार्ग दिखाये।
कीन्हीं जा पर दया, नाथ त्रय ताप नसाये।।
और और तो और, ईश हू जाय मिलाये।
जानें तुम कहँ चीन्ह, लयौ जीवन फल पाये।।
बिना तुम्हारे जीव कौ, जीवन जन्म न सार है।
जो जन तुमहिं न पावहीं, वो जग में भूभार है।।

टिप्पणी : लेखक गुरुदेव जी के दीक्षित शिष्य थे। रचना उनके पुत्र डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी (गोरखपुर) ने भेजी है। आप भी पूज्य गुरुदेव के शिष्य हैं। फोन नं. : 0551–2200036

श्री महाप्रभु जी की जगत पर दया

– अवनीश भटनागर, सहारनपुर

योगेश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी का प्रादुर्भाव अति विशिष्ट संस्कारी जीवों के उद्धार के लिए हुआ था। जन्म जन्मान्तरों के तपस्वी, हिमालय के योगी, भव प्रत्यय योगी आदि उनकी सिद्धकृपा के अधिकारी बने और तत्काल उन्हें सिद्धावस्था का लाभ कराया छोटे और थोड़े संस्कारी जीव तो उनके पावन श्री चरणों में टिक ही नहीं सके जैसे साईदास व मंगामल आदि। थोड़े संस्कार वाले जीव अन्य बाह्यवृत्ति के साधन तो कर लेते हैं पर श्री महाप्रभु जी की दिव्य सिद्ध कृपा के अधिकारी नहीं बन पाते। हमारे सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी ने जब अपने एक मित्र के सम्बन्ध में श्री रामलाल महाप्रभु जी के चरणों में जिक्र किया तो उन्होंने कहा कि बेटा अपने उस मित्र को यहाँ कदापि नहीं लाना तब गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी ने कहा कि प्रभुजी क्या वह संस्कारी नहीं है तब महाप्रभु श्री रामलाल जी ने कहा कि नहीं संस्कारी तो वह राजा दशरथ के समय का है। थोड़ा संस्कारी होने के कारण से श्री रामलाल महाप्रभुजी ने उसे अपने पास नहीं आने दिया। भारी संस्कारी, तपस्वी, योगी संस्कारी जीव श्री रामलाल महाप्रभु जी की शरण में आते हैं और जो देवताओं को भी दुर्लभ मार्ग है। सिद्धयोग मार्ग उसको अपना कर सच्चे सद्गुरुदेव से दिव्य शक्तिपात लेकर जन्मों से सुप्त कुण्डलनी महाशक्ति को जागृत करके षटचक्रों का भेदन करके सहस्त्रसार में जो परम शिव के साथ मिलन प्राप्त करती है और समाधि के अन्दर उत्तरोत्तर योग्य उपलब्धियों को प्राप्त करके अमर कैवल्यपद को प्राप्त कर जीव को परम लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है। यह सब योगीश्वर श्री रामलाल महाप्रभु एवं योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी के एक कृपा कटाक्ष से तत्काल संभव हो उठता है। बस आवश्यक है जीव का भारी संस्कारी होना।

कहा जाता है कि मनुष्य मात्र योग का अधिकारी है तो वहाँ यम, नियम, आसन, तक ही यह कहना ठीक होगा आगे के अंगों के लिए संस्कार भेद लागू हो जाता है। यदि वह संस्कारी है तो आगे के योग साधनों को आत्मसात करेगा या कर पायेगा अन्यथा नहीं और इन अमर योग साधनों को बीच में त्याग कर पुनः पतन गामी संसार की ओर मुड़ जायेगा फिर वहाँ से उसका उर्ध्वगामी चिन्तन और सिद्धयोग साधन छूट जायेगा वह संसार के सब कार्य करेगा हो सकता है वह धार्मिक भी रहे पर आत्म उत्थान का साधन उससे बिल्कुल छूट जायेगा करुणामय श्री सद्गुरुदेव जी का जगतारन पावन नाम वह नहीं ले पायेगा बहिर्मुखी दुनिया का प्यारा बन जायेगा अन्तर्मुखी दुनिया से दूर हो जायेगा।

योगीश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी के सिद्धयोग में तो बिना भारी शुभ संस्कारों के

प्रवेश ही वर्जित है भारी संस्कारों के बदले तो सिद्धों के दर्शन ही होते हैं। जिसने बहुत अच्छा स्वाध्याय किया है उसे ही सिद्धों के दर्शन हुआ करते हैं, कहा भी है– 'स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोग' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति को सिद्ध पुरुष इष्ट देवता प्रकट होकर वरदान दिया करते हैं फिर भारी तप की पूंजी के बदले सिद्धों की कृपा या शक्ति संचार प्राप्त होता है और महाप्रभु श्री रामलाल जी व योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी जैसे सिद्ध सिद्धेश्वर का तो कहना ही क्या जिनकी कृपा कटाक्ष से सिद्ध पुरुषों का निर्माण होता है।

किसी भी प्रकार से योगेश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी के परम कल्याणकारी सिद्ध संकल्प में जीव आ जाये तो सिद्धयोग की जो क्रियायें परम दुर्लभ एवं परम गोपनीय हैं वह सब उनके शक्तिपात से स्वमेव होने लग जाती हैं और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता चला जाता है। योगेश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी का संकल्प अमोघ है त्रिलोकी में उनके संकल्प के आड़े कोई देव, दनुज, मनुज शक्ति नहीं आ सकती। श्री महाप्रभु जी जैसा चाहते हैं वैसा ही हुआ करता है उनकी अलौकिक लीलायें इस बात की परिचायक हैं वह चाहें तो क्षण भर में किसी भी कार्य को बना दें। हम श्री रामलाल महाप्रभु जी की अलौकिक लीलाओं को सुन–सुन कर अपना लौकिक या कभी–कभी अलौकिक कार्य बनवाने के लिए उनकी शरणागति ग्रहण करते हैं। श्री रामलाल महाप्रभु जी की कृपा से कठिन से कठिन कार्य भी हो जाया करते हैं कार्य बनने से पहले जीव की दशा कुछ और होती है और कार्य बन जाने के बाद जीव मनमुख हो जाता है गुरुमुख नहीं रहना चाहता क्योंकि गुरुमुख होने से गुरुदेव के कानून में उनके कन्ट्रोल में रहना पड़ता है जो मनमुख जीव नहीं चाहता वह बंदिश में नहीं स्वतन्त्र रहना चाहता है। स्वतन्त्र इच्छापूर्ति वाले जीवों का गुरुशरण में स्थान नहीं वहां तो ऐसे सांचे में ढाला जाता है जिसकी सदा जय और विजय होती है उसकी सारी खोट निकाल देते हैं जब तक सारी खोट नहीं निकल जाती तब तक परिक्षायें लेते रहते हैं और शिष्य को वह बनाते हैं जिससे जगत लाइट लिया करता है और अपना मार्ग खोजा करता है। श्री महाप्रभु जी करन कारन तो स्वयं ही होते हैं पर श्रेय अपने बालकों को दिलाया करते हैं। कहा भी है 'बाँधे चेले के सिर सेले अपने हाथ से।' ब्रह्मचारी गोपालानंद जी के गोलोक गमन के पश्चात् लाहौर के कुछ सतसंगी आकर श्री रामलाल महाप्रभु जी से कहने लगे कि प्रभु जी अब लाहौर में गोपालानंद जी से प्रेरणा प्राप्त करके जो सत्संग मण्डलियां बनी थीं वह अब संकीर्तन में आपका स्वरूप नहीं रखती। श्री रामलाल महाप्रभु ने पूछा तो किसका स्वरूप रखते हैं तो सतसंगियों ने कहा कि श्री राम श्री कृष्ण आदि के रखते हैं। श्री महाप्रभु जी ने कहा कि उन्हीं के स्वरूप रखने चाहिए यह कहकर साथ ही असली बात भी कह दी कि हमने अन्धेरे में चलते हुए लोगों को देखा तो प्रकाश दे दिया शक्ति दे दी गई है कार्य कर दिया गया है शक्ति का प्रवाह चलता रहेगा हमारे नाम को कोई नहीं जानेगा। श्री रामलाल महाप्रभु ने शक्ति देकर भी अपनी पीठ फेर ली और लोग कभी यह जान ही नहीं सके कि यह शक्ति किस की दी हुई है यह सारा अलौकिक कार्य करने वाली विभूति कौन है।

जब पाकिस्तान बनने का कहीं कोई आधार ही नहीं था लगभग बारह वर्ष पूर्व ही उन्होंने बता दिया था। 9 वर्ष पूर्व श्री महाप्रभु जी ने पाकिस्तान बनने से अपने शरीर का विसर्जन कर दिया था। कालान्तर में वैसा ही हुआ पाकिस्तान बना श्री महाप्रभु ने वहाँ फँसे अपने बालकों की रक्षा कर सुरक्षित भारत पहुँचाये। लाहौर एवं अन्य स्थानों के श्री रामलाल महाप्रभु के शक्ति संचारित सतसंगी बालक भारत के अनेक नगरों में जाकर बस गये और उनके साथ था श्री रामलाल महाप्रभु जी का शक्ति संचार व दिव्य संकल्प श्री महाप्रभु जी सद्‌प्रेरणाओं से ओतप्रोत व्यक्तियों ने आचार्यो का काम किया आश्रम एवं योग पीठ स्थापित किये सत्संग एवं संकीर्तन की धून मचा दी और जीवों को दिशा निर्देश देकर लाखों जीवों को धर्म मार्ग पर चला दिया। महाप्रभु श्री रामलाल जी द्वारा शक्ति संचारित लोगों ने अनोखी आध्यात्मिक चेतना प्रदान की जिससे आज चारों तरफ आध्यात्मिक जगत हरा भरा दिखाई देता है यह महाप्रभु श्री रामलाल जी का ही सत्य संकल्प है जो अब स्थान–स्थान पर संकीर्तन एवं योग की धूम मची हुई है। श्री रामलाल महाप्रभु के दरबार से उनके शिष्य ब्रह्मचारी गोपालानंद जी के द्वारा रचित अमर संकीर्तन ध्वनि 'गोविन्द जै–जै गोपाल जै–जै' जगत में धूम मचा रही है। ऐसा कोई संकीर्तन मण्डल नहीं होता जिसमें यह ध्वनि कभी ना कभी अवश्य ही गाई गई होगी। महाप्रभु श्री रामलाल जी द्वारा दिये गये योग के साधन आज योग कक्षाओं का प्रमुख विषय बनते हैं। श्री रामलाल महाप्रभु योग का जितना ज्ञान दे गये बस उससे अधिक योग के विषय में कोई नहीं जानता अधिकांश लोग योग साधनों (आसनों) के विषय में ही ज्ञान रखते हैं सिद्धयोग के विषय में तो कुछ खास नहीं। सिद्धयोग के विषय में तो सिद्धों से शक्ति संचारित व्यक्ति ही जान सकते हैं जिन्होंने सिद्धों का संग प्राप्त किया है उनका शक्तिपात लिया है अपनी सेवा भक्ति से उनके शक्तिशाली मन में स्थान बनाया है और रात दिन सिद्ध पुरुष कृपामयी दृष्टि से उसे देखते रहते हैं अलावा लोगों का इस मार्ग में प्रवेश व ज्ञान नगण्य–सा है।

संसार में चहुँओर ढोंग व आडम्बर का बोल बाला है। हर व्यक्ति किसी भी प्रकार से बस पैसा कमाना चाहता है और सोचता है कि पैसे से सारे सुख खरीद लूंगा और सदा दुनिया में ही बना रहूंगा। पर ऐसा होता नहीं है वह जिन चीजों में सुख समझता है वह सब धोखा मात्र है। आज जो चीज सुखमय दिखाई दे रही है वह न जाने किस घड़ी दुख में बदल जाये कुछ भी कहा नहीं जा सकता। वास्तव में सच्चा सुख यदि कहीं है तो वह योग एवं योगेश्वर रामलाल महाप्रभु व श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु की परम कृपामयी शरणागति में ही है चाहें कोई इस सुख को आज प्राप्त कर ले, कल कर ले या दस बीस वर्ष बिता दे अथवा सोचता ही रह जाये कि आज उनकी शरणागति ग्रहण करूँगा कल करूँगा इसी उहापोह में कब आयु समाप्त हो जाये और काल ले जाये इसका कोई भरोसा नहीं। अच्छा कार्य कल पर न टालें तत्काल कर ले और बुरे विचार और कार्य को सदा सदैव टालता ही रहे।

शरीर के अन्दर वही सब वस्तुएँ विद्यमान हैं जो बाहर ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं। कहा भी

है 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' शरीर के अन्दर की सारी शक्तियों का साक्षात्कार कर लेने पर परम विराट ब्रह्माण्ड का साक्षात्कार हो जाता है। जब तक वृत्ति अन्तर्लीन नहीं होती तब तक जीव अन्दर के खजाने से अनभिज्ञ ही रहता है और आडम्बर, ढोंग, बनावटीपन, दिखावा, छलावा, मिथ्यात्व और बहिर्मुखता में भटकता रहता है जैसे ही उसका किसी पूर्व संस्कारवश सिद्धों के शक्ति संचार द्वारा या अपने पूर्व संचित शुभकर्मों के प्रताप से या योग मार्ग में की गई मेहनत के फलस्वरूप अन्तर्जगत में प्रवेश हो जाता है और सत्य से उसका परिचय हो जाता है फिर वह आडम्बर में भटकता नहीं घूमता, ढोंग में नहीं फंसता, कर्मकाण्ड में नहीं उलझता वह तो आत्म साक्षात्कार करके नित्य आत्म स्वरूप का ही चिन्तन करता है और बाह्य रूप से शान्त एवं साधारण दिखाई देता है और ऐसी मंजिल प्राप्त कर लेता है जो किसी भी अन्य आध्यात्मिक मार्ग द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती।

दिव्य सिद्धयोग मार्ग पर चलकर रात दिन मेहनत करते-करते जीव समाधि अवस्था (समाधि समतावस्था जीवात्मा परमात्मनः) में से आगे ही आगे बढ़ता चला जाये और अपने मन बुद्धि चित्त अहंकार को परब्रह्म में लीन करके अपना आप मेटकर स्वयं भी ब्रह्मरूप ही हो जाये कहा भी है' आपा मेटि जीवित मरे सो पावे करतार' यह परम दुर्लभ एवं दिव्य स्थिति अपने को श्री गुरु चरणों पर बलिदान किये बिना नहीं प्राप्त हो सकती। बलिदान का मतलब जान या जीवन देना नहीं बल्कि अपने कीमती जीवन का श्री सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी व श्री चन्द्रमोहन जी के पावन श्री चरणों में पूर्ण रूपेण सच्चा समर्पण करना ही है। जिन परम संस्कारी आत्माओं को महाप्रभु श्री रामलाल जी एवं महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी जैसे सच्चे एवं परिपूर्ण सद्गुरु प्राप्त हुए हैं उन सबको तो उनके पावन श्री चरणों में अनन्यनिष्ठ भाव से पूर्ण समर्पण करना ही चाहिए। जिससे सिद्धयोग की प्राप्ति, आत्म योग में उन्नति व आगे चलकर कैवल्य मोक्ष का रास्ता अवश्य ही प्रशस्त हो सकेगा।

सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्।
शान्तिदं सर्वरिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम्।।

हरिनाम संकीर्तन सभी रोगों का उपशमन करने वाला, सभी उपद्रवों का नाश करने वाला और समस्त अरिष्टों की शान्ति करने वाला है।

कविता

– राजीव कुमार, अम्बिकानगर – अम्ब, ऊना, एच.पी.

जन्म दिवस गुरुदेव आपका शुभ संदेश लाया।
योग प्रचार प्रसार आगे बढ़ा गगन गुंजाया।।

श्री सिद्धगुफा में संगतों ने डेरा जमाया।
गुरुदेव की कृपा बरसी, सबका मन मुस्काया।।

छम-छम मोर भी नाचते, ऐसा आनन्द मनाया।
गुरुदेव की शक्तिपात दीक्षा ने अलख जगाया।।

श्री सिद्धयोग ने गुरुदेव का प्रचार आगे बड़ा बढ़ाया।
गुरुभाईयों की अटूट श्रद्धा ऐसा रंग चढ़ाया।।

इम्तिहान की घड़ी ने दरबार सजाया।
प्रभु स्वयं परखते! किसको कृपा पात्र बनवाया।।

एक माला के सब मनके गुरुवर की अलौकिक माया।
जिस घट शक्ति संचारित होगी वहीं बरसेगी लीलाधर की योग माया।।

फिर क्यों तेरा मन विषयों में भरमाया।
योगियों का आशीर्वाद! छूटेगा जरा मरण का साया!!

कालचक्र

चन्द छवि चातक विजय कुमार शर्मा, सहारनपुर

तीव्र पुण्य व तीव्र पाप का उदय कब हो जाये यह संसारी प्राणी की समझ से बहुत दूर है। वह तो केवल जो वर्तमान में जो घटित हो रहा है, वहीं तक उसकी बुद्धि सीमित है। केवल भूतकाल में बीत चुकी परिस्थितियों का ही चिन्तन कर सकता है। जिसके करने से उसे कोई लाभ होने वाला नहीं है। भविष्य के बारे में भी उसकी बुद्धि इतनी सुदृढ़ एवं विवेकपूर्ण नहीं है कि आने वाली स्थिति का पूर्वाभास हो जाये। कोई बिरले सन्तजन, प्रभुभक्त जो प्रभुचरणों में पूर्णतया समर्पित है, ऐसे परम योगी महानुभाव अपनी साधना व तप के द्वारा भविष्य में होने वाली शुभ–अशुभ स्थिति को जान लेते है। सामान्य प्राणी तो अपनी दिनचर्या में इतना उलझा रहता है कि वह अध्यात्म मार्ग पर चलने के सम्बन्ध में न तो सोचता है, और न ही किसी प्रकार का सार्थक प्रयास ही करता है। प्रयासहीन, विचारहीन प्राणी का जीवन इस संसार में पशु के समान है। बार–बार जन्मने व मृत्यु के चक्र में फँस वह चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाता रहता है तथा अध्यात्म मार्ग की अमूल्य निधि ''कैवल्य मुक्ति'' से सर्वथा वंचित रहता है। कैवल्य मुक्ति का मार्ग इतना सरल नहीं है। इस मार्ग में केवल उन्हीं दिव्य पुण्यशील आत्माओं का प्रवेशाधिकार है, जिन्होंने ज्ञान, वैराग्य की अग्नि में अपने आपको तपाया है। अग्नि में सोने को तपाने के पश्चात् ही उसके सुन्दर आभूषण तैयार कर पाते हैं। ज्ञान वैराग्य एवं प्रभु भक्ति रस से परिपूर्ण दिव्य आत्मायें समय–समय पर जग में अवतरित होती हैं। जगत में उनके अवतार लेने का एक मात्र उद्देश्य संसार में धर्म स्थापना तथा भटके हुए जीवों को धर्ममार्ग पर चलने हेतु प्रेरित करना है।

सुख और दुःख इस संसार रूपी भवसागर के दो किनारे है। जिनका आगमन प्रत्येक प्राणी के जीवन में बारी–बारी आता रहता है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि हमारी जीवन नैय्या सुख–दुख के हिचकोलों के साथ इस भवसागर में तैरती रहती है। सुख के समय सामान्य जीव भौतिक सुखों की गहन निद्रा में सो जाता है। उसको आभास भी नहीं हो पाता है कि सुख का समय कब व्यतीत हो गया और दुःख उसके जीवन में दस्तक दे देता है। सुख के समय प्राणी प्रभु नाम सिमरन न करने के कारण दुःख की स्थिति में रोता चिल्लाता है। उसकी सुनने वाला भी कोई उसे दिखाई नहीं देता है। चारो ओर अन्धकार के गहरे बादल उसे घेरे रहते हैं। कभी–कभी दुःख की स्थिति जीव के लिए इतनी पीड़ादायक व असहनीय हो जाती है कि वह जीवन से छुटकारा पाने के लिए आत्महत्या करने का निर्णय ले लेता है। ऐसा ही एक प्रसंग मेरे देखने में आया। एक व्यक्ति जो भयंकर कोढ़ रूपी रोग से ग्रसित था। उसके सारे शरीर से

दुर्गन्धपूर्ण मवाद बह रही थी। निकट सम्बन्धी एवं मित्रजन भी उसके पास बैठते हुए कतराते थे तथा सोचते कि कहीं यह रोग हमें न लग जाये। रोगी का इलाज विशेषज्ञ डॉक्टर के वहाँ चल रहा था। परन्तु उसके स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं हो रहा था। रोगी व्यक्ति ने डॉक्टर से पूछा कि क्या मैं ठीक हो जाऊंगा? उसकी बात सुन डॉक्टर साहब ने कहा कि तेरी इस बीमारी की दवा मेरे पास नहीं है। अब तू जो चाहे खा पी सकता है। डॉक्टर की बात सुन वह निराश हो गया और सोचने लगा कि ऐसे जीवन से अच्छा तो मर जाना है। उसने निर्णय लिया कि यदि वह आत्महत्या कर लेगा तो घरवालों को भी छुटकारा मिल जायेगा। इन्हीं विचारों में मग्न वह एक पार्क में जाकर बैठ गया। उसके अन्तर्मन में अनेकों प्रकार के प्रश्न उठ रहे थे। तभी उसकी दृष्टि बगीचे के माली पर गयी जो पेड़–पौधों पर छिड़कने वाली कीटनाशक दवाई का घोल तैयार कर रहा था। अपने उद्देश्य पूर्ति के लिए अब उसे कहीं ओर जाने की जरूरत नहीं रही और सोचने लगा कि कीटनाशक दवा के सेवन से तेरी मृत्यु हो जायेगी। थोड़ी देर बाद वह व्यक्ति अपने स्थान से उठा और कीटनाशक दवा घोल रहे व्यक्ति के पास पहुँच गया और माली से कहा भैया मुझे एक कुल्हड़ दवा दे दीजिए। इस पर माली ने पूछा कि इसका क्या करोगे? रोगी व्यक्ति कहने लगा कि इसे पीकर मरना थोड़े ही है, यह दवा तो सफाई के लिए ही प्रयोग करनी है। यह बात सुन माली ने दवा का कुल्हड़ भर उसको दे दिया। कुछ दूर चल उसने देखा कि यहाँ पर मुझे देखने वाला कोई नहीं है और अगले ही पल कीटनाशक दवा का कुल्हड़ उसने पी लिया। पुनः कुछ देर बाद रोगी व्यक्ति कीटनाशक दवा छिड़क रहे व्यक्ति के पास पहुँच कीटनाशक दवा मांग ली। रोगी व्यक्ति दूसरा कुल्लहड़ भी पी गया। अब उसकी हालत बिगड़ने लगी तथा कुछ देर बाद भूमि पर गिर पड़ा। उसे नहीं पता कि वह कहाँ पड़ा है, पूरी रात्रि वह उसी पार्क के एक कोने में पड़ा रहा।

अगले दिवस रोगी व्यक्ति जो यह जान चुका था कि वह तो मर चुका है, सुबह के उजाले में आँखें खोलकर कभी उस स्थान को तथा स्वयं को देखने लगा। उसे विश्वास नहीं हो पा रहा था कि वह जीवित है। वह रोगी व्यक्ति उठा और सड़क की ओर चल दिया। अब वह भीतर से अपने आपको काफी स्वस्थ महसूस कर रहा था। चलते–चलते उसे उसके गाँव का व्यक्ति मिला। सामने से आ रहे व्यक्ति ने कहा कि "तू रात भर कहाँ रहा, तेरे घर वाले तुझे न पाकर बहुत चिन्तित हो रहे हैं। अब तुरन्त अपने घर पहुँच।" घर पहुँचने पर उसके परिवार का प्रत्येक व्यक्ति अपनी उम्र व रिश्ते के अनुसार उससे पूछने लगे कि रात भर कहाँ पर रहे। उसने डॉक्टर और पार्क की सारी बात विस्तार से बता दी और यह भी बताया कि अब मैं अपने को स्वस्थ महसूस कर रहा हूँ। दूसरे दिन रोगी जो अब रोग मुक्त हो स्वस्थ अनुभव कर रहा था डॉक्टर से पूछने लगा कि आप तो यह कहते थे कि तेरी बीमारी की दवा मेरे पास नहीं है, मैं तो पूर्णरूपेण स्वस्थ हूँ। रोगी की बात सुन डॉक्टर कहने लगा कि पहले ये बता कि तूने जहर कब और कहाँ से खाया। यह बात सुन रोगी अचम्भे में पड़ गया कि इस बात का डॉक्टर को कैसे पता

चला। डॉक्टर के पूछने पर उसने सच–सच सारी बात बता दी। तब डॉक्टर बोला कि 'तेरी बीमारी का इलाज जहर ही था, जो मैं अपने हाथ से तुझे नहीं दे सकता था।' जीवन में प्राणी को यह ज्ञान नहीं होता कि कब उसका तीव्र पुण्य उदय होने वाला है और उसी के प्रभाव से जहर भी अमृत बन उसके जीवन की रक्षा करता है। सभी शुभ अशुभ कर्मों का फल तो स्वयं को ही भोगना पड़ता है। अतः निष्काम भाव से कर्म करते हुए प्राणी उन्हें श्री प्रभुजी के चरणों में समर्पित कर दें। तब वह कर्मों के बन्धन से मुक्त रहता है।

शोक समाचार

1) हमारे पुराने गुरुभाई **रामकृष्ण कात्यायन** – सिद्धि भाई का फरवरी माह में देहावसान हो गया। बड़े दुःख की बात है। वे गुरुदेव के पुराने साधकों में से एक थे। श्री प्रभु जी उनकी आत्मा को शान्ति दें।

दुःख की इस बेला पर दुःख संतप्त परिवारीजनों को सिद्धयोग परिवार हार्दिक संवेदना प्रकट करता है।

2) एक गुरु कृपा प्राप्त साधक **श्री प्रताप सिंह** जो नेवी से अवकाश प्राप्त थे, का 9 फरवरी को देहावसान हो गया। श्री प्रभु जी उन्हें अपने अभय चरणों में स्थान दें।

दुःख की इस बेला पर दुःख संतप्त परिवारीजनों को सिद्धयोग परिवार हार्दिक संवेदना प्रकट करता है।

3) गुरुदेव के एक काफी पुराने व लाड़ले शिष्य कृष्ण चन्द शर्मा बढांही (मण्डी) वालों का 2 मार्च को देहावसान हो गया। वे पुराने शिष्य थे और योग का बहुत प्रचार किया है। पूरे हिमाचल प्रदेश में उनके द्वारा गुरुदेव का योग प्रचार हुआ है। श्री प्रभुजी उन्हें अपने अभय चरण शरण प्रदान करें तथा दुःखी परिवारिजनों को दुःख सहन की ताकत प्रदान करें। सिद्धयोग परिवार सभी बिछुड़े आत्माओं को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

4) जीन्द निवासी भाई लाजपतराय का 27 फरवरी को देहावसान हो गया है। सिद्धयोग परिवार उनके प्रति भी हार्दिक संवेदना प्रकट करता है।

जय गुरुदेव !

– सम्पादक सिद्धयोग

अभ्यास और वैराग्य से योगसिद्धि

– डॉ. जे.पी. शर्मा, पांवटा साहिब, (हिमाचल प्रदेश)

प्राणी मात्र का मन स्वभाव से चंचल है, उनमें मनुष्य का मन समुद्र तल से आसमान तक को छू लेने की आकांक्षायें पाले हुए है। अनेकों संकल्प–विकल्प बनते तथा बिगड़ते रहते हैं। मन से ही शरीर नियंत्रित रहता है। हमारा शरीर दश इन्द्रियों का निवास स्थान है। इन्द्रियों का सम्बन्ध बुद्धि से होता है तथा बुद्धि मन द्वारा शासित है, अर्थात् मन ही हमारे शरीर पर शासन करता है। मन अगर किसी कार्य को करने का संकल्प ले ले, तो अमुक कार्य हो जाता है। इच्छा दृढ़ न बने तो वह कार्य पूर्ण नहीं हो पाता। सत्य ही कहा जाता है।

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
मन ही मेरा शत्रु, मन ही मेरा मीत।।

उत्सुकतावश, भय के कारण, मन में हर–पल अनेकों विचार बनते व बिगड़ते रहते हैं। मन में तरह–तरह की कल्पनायें उठती हैं और शान्त हो जाती हैं। आशायें जागती हैं और सो जाती हैं। यह सब मन की चंचलता के कारण चित्तवृत्तियाँ बनती तथा बिगड़ती रहती हैं। चित्तवृत्तियों से मन अशान्त बना रहता है। अशान्त मन से कोई कार्य पूर्ण रूपेण सफल नहीं होता, क्योंकि चित्तवृत्तियाँ हर–पल, हर–क्षण रास्ता रोके खड़ी रहती हैं। नाना प्रकार के सकारात्मक तथा नकारात्मक विचार बनते– बिगड़ते रहते हैं। अतः कार्य सफलता के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति तथा साहस की आवश्यकता है। महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में स्पष्ट कहा है :–

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।। (1/12)

अर्थात् उन चित्तवृत्तियों का निरोध; अभ्यास और वैराग्य से होता है। चित्तवृत्तियों का प्रवाह परम्परागत संस्कारों के बल से सांसारिक भोगों की ओर चल रहा है। उस प्रवाह को रोकने का उपाय अभ्यास और वैराग्य है। गीता में योगेश्वर ब्रह्माण्ड नायक श्री कृष्णचन्द जी महाराज ने कहा है–

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

(6/35)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! अभ्यास अर्थात् बार–बार प्रयत्न करने से वैराग्य से मन वश में होता है, इसलिए मन को अवश्य वश में करना चाहिए।

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।। (1/13)

अर्थात् उन दोनों में (वैराग्य तथा अभ्यास) से चित्त की स्थिरता के लिए जो प्रयत्न किया जाता है वह अभ्यास कहलाता है। अतः मन को स्थिर करने के लिए बार-बार प्रयास करना ही अभ्यास है।

मनुष्य का मन तो स्वभाव से चंचल है अतः ऐसे मन को स्थिर करने को निरंतर अभ्यास करते रहना चाहिए। कहा भी गया है –

अति की रगड़ करे जो कोई, प्रगट अग्नि चन्दन से होई।।

अर्थात् जब चन्दन को चन्दन की लकड़ी से लगातार रगड़ा जाता है तो अग्नि स्वयं पैदा हो जाती है। उसी प्रकार कहावत है –

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत-जात के सिल पर होत निशान।।

अर्थात् अभ्यास करने से मन्द बुद्धि भी ज्ञानी हो जाता है जिस प्रकार पत्थर को बार-बार रस्सी से घिसने से निशान बन जाते हैं। अतः हमें मन को वश में करने के लिए बार-बार प्रयत्नशील बने रहना चाहिए।

यथा :

स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः।।

अर्थात् वह अभ्यास बहुत समय तक निरन्तर लगातार और आदरपूर्वक सांगोपांग सेवन किया जाने पर, दृढ़ अवस्था वाला होता है। अतः साधक अभ्यास पर्यन्त दृढ़-निश्चल क्रियाशील बना रहे। आलस इत्यादि का त्याग सम्पूर्णता से कर दे। अपने विश्वास और संयम से साधक अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है। अभ्यास काल की सीमा न रखके, आजीवन अभ्यास करता रहे। अभ्यास में किसी तरह का व्यवधान न पैदा होने पाये। अभ्यासान्तर्गत सद्प्रेरणायें होती हैं। उनका यथा संभव ध्यान रखे तथा अवहेलना न करे। बुद्धि कुंठित न करे। आलस न करे, जीवन का ध्येय बनाकर बार-बार निरन्तर अभ्यास करता रहे। प्रेम तथा आदरपूर्वक किया गया अभ्यास ही दृढ़ अभ्यास बन जाता है। अभ्यास करते समय किंचित भी शेष न रखे। धैर्य पूर्वक अपनी सारी ऊर्जा अभ्यास में लगा दें। यथा –

कामी, क्रोधी, लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति, बरण, कुल खोय।।

अर्थात् इन्द्रिय विषयी, क्रोध करने वाला, लालच करने वाला, कभी भक्ति नहीं कर पाता। भक्ति के लिए जाति, पाति के भेदभाव तथा अपने अस्तित्व को मिटाना ही पड़ता है। भगवान की भक्ति के लिए अथक प्रयास करना आवश्यक है। उस चिदानन्द अजर, अमर अविनाशी की भक्ति शान्त मन की गहराइयों में बैठकर करनी पड़ती है तभी योग्य शान्ति मिल पाती है। यथा –

जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी बैठ।
मैं बौरी ढूँढन गई, गयी किनारे बैठ।।

अर्थात् सागर से मोती निकालने के लिए समुद्र की सतह तक जाना पड़ता है। समुद्र के किनारे पर बैठने से मोती प्राप्त नहीं हुआ करते। ठीक उसी तरह भगवान की प्राप्ति हेतु अन्तर्मन की गहराइयों में उतरना होता है, तभी योग सिद्धि हो पाती है। गीता में कहा गया है,

स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।। (6/23)

अर्थात् साधक को योग का अभ्यास बिना उकताये हुए चित्त से निष्ठापूर्वक करते रहना चाहिए।

<u>वैराग्य योग –</u>

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्।।

– पतंजलि योग दर्शन, (1/15)

अर्थात् देखे और सुने हुए विषयों में सर्वथा तृष्णारहित चित्त की; जो वशीकार नामक अवस्था है, वह, वैराग्य है। अन्तःकरण और इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव में आने वाले इस लोक के समस्त भोग, जो प्रत्यक्ष उपलब्ध नहीं है केवल उनके बारे में वेद–शास्त्रों में वर्णन सुना गया है, इस प्रकार के भोगों से जब मन अथवा चित्त भलीभांति तृष्णारहित हो जाता है तथा उसे प्राप्त करने की इच्छाओं का सम्पूर्णता से नाश हो जाता है, ऐसे कामना रहित चित्त को अपर वैराग्य कहते हैं।

तत्परं पुरुषख्याते र्गुण वैतृष्ण्यम्।। *– पतंजलियोगदर्शन 1/16*

अर्थात् पुरुष के ज्ञान से जो प्रकृति के गुणों में तृष्णा का सर्वथा अभाव हो जाना ही, पर वैराग्य है। साधक की विषय भोगों की कामनाओं का सर्वथा नाश हो जाता है तथा चित्त का स्वभाव समान बना रहता है। ध्येय में एकाग्रता परिपक्व हो जाती है, प्रकृति और पुरुष विषयक विवेक ज्ञान होने लगता है। साधक की तीनों गुणों में कोई इच्छा शेष नहीं रह जाती, साधक सदैव आत्म निष्काम, तृप्त रहा करता है, ऐसी अवस्था को पर–वैराग्य कहा जाता है। राजा भर्तहरि, गोपी चन्द जी इत्यादि अनेकों महापुरुष इस श्रेणी में आते है। गीता में कहा गया है–

यदा हिनेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारुढस्तदोच्यते।।

अर्थात्, जब योगी न तो इन्द्रियों के विषयों में और न कर्मों में ही आसक्त होता है तथा सब प्रकार से संकल्पों का भलीभांति त्याग कर देता है तब वह **योगारुढ** कहलाता है। अतः साधक अथक प्रयत्नशील रहते हुए अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा योग की प्राप्ति कर सकता है।

सादर सद्‌गुरु चरणों में मेरा कोटिशः नमन

गुरुदेव हैं कौन ?

– आचार्य डॉ. अमित कुमार मिश्रा 'चिन्तामणि' शुकलागंज (उन्नाव)

कोई गुरुदेव कहता है, कोई सद्गुरु समझता है,
मगर परब्रह्म को केवल स्वयं परब्रह्म समझता है।

प्रभु श्री रामलाल जी स्वयं परब्रह्म परमेश्वर,
हृदयाराध्य हैं मेरे जगत के जो हैं जगदीश्वर,
कृपा हो जाए गर इनकी प्रभुमय जग ये दिखता है,
तेरे परकाश की एक, किरण से रवि दमकता है,
मगर संसार गुरुवर को केवल देही समझता है...

मिले गुरुवर स्वरूप में प्रभु श्री योग योगेश्वर,
करुणानिधि करुणालय महाप्रभु जी परमेश्वर,
उन्हीं के निज स्वरूप में श्री चन्द्रमोहन भगवन,
विराजे योगेश्वर दोनों निज भक्तन के निज मन,
मगर भगवान को केवल निर्मल मन समझता है...

है बारम्बार सिद्धों से श्री सिद्ध गुफा वन्दित,
सुर नर मुनि सभी करते शत–शत् बार अभिनन्दित,
करे मिल जुल वन्दना, श्री युगल चरणों की,
योगेश्वर द्वय की और श्री प्रभु जी बंदों की,
प्रभु जी आप सम आप अमित मन रहता है...

श्री सद्गुरुदेव की बेजोड़ पकड़ :-

लोक-परलोक-मोक्ष तक

(प्रथम)

जगदात्मा योगेश्वर श्री कृष्ण चन्द्र ने महात्मा अर्जुन के यह पूछने पर कि हे मधुसूदन! इस जन्म में की गयी यौगिक साधना शरीर छूटने के बाद मिलेगी कि नहीं मिलेगी। अर्जुन की प्रार्थना इस प्रकार है –

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति।।
कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि।।
एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते।।

श्रीभगवानुवाच –

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।।
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।।
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।।
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।।

योगेश्वर श्री कृष्ण चन्द्र ने उनकी प्रार्थना के सम्बन्ध में बतलाया कि इस जन्म में की गयी साधना का फल अगले जन्म में अवश्य ही मिलता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अपने श्री सिद्धगुफा दरबार में घटित हुआ। उस कृपा प्रसंग को समझना और समझाना ही इस लेख का मुख अंश है।

हमारे एक गुरुभाई का नाम श्री ईश्वर दत्त शर्मा है। जो मूल रूप से जनपद जिंद हरियाणा प्रांत के निवासी हैं। इनकी धर्म परायणा पत्नी का नाम श्रीमती आनन्द शर्मा है। कुमारी आनन्द शर्मा को चार–पाँच वर्ष की अवस्था में जब इन्होंने होश सम्भाला तभी से हमारे दादा गुरुदेव का स्वप्न में, पूजा में और कभी–कभी प्रत्यक्ष भी दर्शन प्राप्त होता रहता था। दादा गुरुदेव मुस्कान के साथ कहते थे कि मुनिया तुम हमारे पास आ जाओ। मायके में अपने माँ–बाप, चाचा–चाची व अन्य पारिवारिक सदस्यों को जब कुमारी आनंद अनुभव की यह बात बतलाती तो अपनी भावना के अनुसार कोई कहता कि शंकर भगवान होंगे, कोई कहता कि विष्णु भगवान होंगे और कोई अपना कुल देवता बताकर इनकी जिज्ञासा को शाँत कर देता। होश संभालने के बाद से शादी होने, लड़का–लड़की हो जाने तक यह असमंजस की स्थिति बनी रही। इसी रहस्य पर से पर्दा तब हटा जब इनके पतिदेव श्री ईश्वर दत्त शर्मा जी आराध्यदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से गुरुपूर्णिमा के पर्व पर जुलाई 1977 में योगदीक्षा प्राप्त कर गुरुदेव और दादा गुरुदेव का स्वरूप लेकर अपने घर पहुँचे। घर पहुँचने पर आलमारी में पूजा के लिए गुरुदेव और दादा गुरुदेव का स्वरूप विराजमान कराया तो इनकी पत्नी जो घर पर ही थी और उनकी दीक्षा नहीं हुई थी ने बड़े ही आत्मविभोर स्वर में दादागुरुदेव के स्वरूप की तरफ इशारा करते हुए कहा कि यही बाबा जी हमें प्रायः दिखायी देते रहते हैं और कहते हैं कि मुनिया अब तुम हमारे पास आ जाओ। अपने पतिदेव से इन्होंने प्रार्थना किया कि इस बाबा जी का फोटो आपको कहाँ से मिला, क्या आपने इनके दर्शन किये हैं? आदरणीय भाई श्री ईश्वर दत्त शर्मा जी ने बतलाया कि मैंने जिस गुरुदेव से योगदीक्षा ली है उनके श्री गुरुदेव का ये स्वरूप है।

श्री ईश्वर दत्त शर्मा जी आराध्यदेव की अशरण शरण को कैसे प्राप्त हुए इस प्रसंग का वर्णन प्रासंगिक है। अपने सिद्धयोग दरबार के नवागन्तुक साधकों और जिज्ञासुओं के मन में श्रद्धा का भाव बलवान हो इस कामना के साथ इस प्रसंग का वर्णन किया जा रहा है। जिससे यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जायेगी कि श्री गुरुदेव भगवान अपने पुराने संस्कारी बच्चों को अपने पास बुला ही लेते हैं, चाहे कारण कुछ भी बना लें। श्री ईश्वर दत्त शर्मा जी हरियाणा विद्युत बोर्ड में उपखण्ड अधिकारी (एस.डी.ओ.) के पद पर सफीदो विद्युत केन्द्र पर नियुक्त थे। इनकी डिविजनल यूनिट में श्री बलवंत सैनी और श्री कलीराम शर्मा नाम के दो और कर्मचारी कार्यरत थे। घटना सन् 1977 की फरवरी मार्च की है। श्री शर्मा जी किसी कार्यवश श्री बलवंत सैनी के पास गये तो सैनी के टेबुल पर श्री सिद्धयोग पत्रिका रखी हुई थी। पत्रिका को उन्होंने सरसरी निगाह से देखा और बलवंत सैनी से कहा कि यह पत्रिका आज रात भर के लिए दे दो, कल सुबह तुम्हें पढ़कर लौटा दूंगा। सैनी जी ने उन्हें पत्रिका दिया और श्री शर्मा जी घर आकर पूरी रात जगकर श्री सिद्धयोग पत्रिका पढ़कर समाप्त कर दिये। आराध्यदेव का आकर्षण था या पत्रिका का प्रभाव, यह तो श्री गुरुदेव भगवान ही जानें, परन्तु पत्रिका पढ़ने के बाद श्री गुरुदेव

भगवान के दर्शन के लिए इनका मन बड़ा ही व्याकुल और परेशान था। दूसरे दिन पत्रिका श्री बलवंत सैनी को सौंपते हुए इन्होंने उनसे कहा कि भाई! अपने श्री गुरुदेव का दर्शन मुझे भी कराने की कृपा करें। सचमुच तुम्हारे गुरुदेव ईश्वर से कम नहीं हैं। बलवंत सैनी जी ने कहा कि जब हरियाणा-पंजाब का कार्यक्रम होगा तब या गुरुपूर्णिमा पर मैं श्री गुरुदेव के दर्शन करने जाता हूँ तब तक आपको इंतजार करना पड़ेगा।

समय बीतता गया और आषाढ़ माह की पूर्णिमा (जो गुरुपूर्णिमा के नाम से जानी जाती है।) जुलाई में आ ही गयी। श्री कलीराम शर्मा, श्री ईश्वर दत्त शर्मा के अधीनस्थ कर्मचारी थे और लाइनमैन के पद पर उस समय कार्यरत थे। उन्होंने अपने एस.डी.ओ. श्री शर्मा जी को चार दिन का आकस्मिक अवकाश (C.L.) का प्रार्थनापत्र दिया जिसमें यह साफ-साफ लिखा था कि मैं अपने श्री गुरुदेव भगवान का दर्शन पूजन करने अपने गुरु आश्रम श्री सिद्धगुफा सवाई धाम जाना चाहता हूँ। अवकाश का पत्र पढ़ते ही इन्हें गुरुदेव और सिद्धयोग पत्रिका की बात याद आ गया। इन्होंने उनसे कहा कि तुम्हारे और बलवंत के गुरुदेव एक ही हैं क्या? श्री कली राम शर्मा ने बताया कि श्री बलवंत सैनी हमारा गुरुभाई है और हम दोनों लोग गुरु पूर्णिमा पर गुरुदेव का पूजन करने अपने आश्रम सवाई धाम जा रहे हैं। दो-तीन मिनट सोचने के बाद श्री शर्मा जी ने कहा कि तुम्हारे गुरुदेव के दर्शन के लिए मुझे भी चलना है। अतः तुम्हारी छुट्टी की कोई बात नहीं यह हमारे बस की बात है, पहले मैं अपनी चार दिन की छुट्टी स्वीकृत कराकर फिर तुम्हें बतलाता हूँ।

बरसात के दिनों में निर्बाध विद्युत प्रवाहित कराना एक टेढ़ा काम है और इस समय अधिकारियों और कर्मचारियों को छुट्टी कम ही मिल पाती है। श्री शर्मा जी को अपनी (सी.एल.) छुट्टी स्वीकृत कराने में काफी परेशानियों का सामना करना पड़ा और इनकी छुट्टी स्वीकृत हो गयी। श्री बलदेव सैनी, श्री कली राम शर्मा और इंजीनियर श्री ईश्वर दत्त शर्मा प्रातःकाल ही चले और सायंकाल तक सिद्धसेवित श्री सिद्धगुफा सवाई धाम पहुँच गये। स्नान आदि से निवृत्त होकर ये तीनों भाई गुरुदेव के दर्शनार्थ गुरुपूर्णिमा से एक दिन पूर्व गुरुभवन में पहुँचे और सब लोगों ने श्री चरणों में प्रणाम निवेदित किया। रास्ते में श्री ईश्वर दत्त शर्मा जी हमारे इन दोनों गुरुभाइयों से जब यह पूछते थे कि तुम्हारे गुरुदेव हमें दीक्षा दे देंगे कि नहीं, तो ये लोग बतलाते थे कि हमें चार साल बाद दीक्षा मिली है और दूसरा कहता कि हमें पाँच साल बाद दीक्षा मिली है। इन लोगों की बातों से श्री ईश्वर दत्त शर्मा जी को पूर्णरूपेण विश्वास हो गया कि इस यात्रा में हमें योग दीक्षा नहीं मिल पायेगी।

श्री बलवंत सैनी और श्री कलीराम शर्मा जी श्री गुरुदेव भगवान के पुराने शिष्य होने के नाते पूर्व परिचित थे। अतः श्री गुरुदेव भगवान ने श्री ईश्वर दत्त शर्मा जी से पूछा लल्ला! क्या नाम है? कहाँ से आये हो? क्या करते हो? और कैसे आये हो? ईश्वर दत्त शर्मा जी ने उपरोक्त प्रश्नों का प्रणाम की मुद्रा में हाथ जोड़कर श्री गुरुदेव भगवान को उत्तर दिया। फिर गुरुदेव ने

एक बार उनकी पीठ पर जोर से थपकी लगायी। इशारे से श्री शर्मा जी अपने साथ आये दोनों भाइयों से यह जानना चाहते थे कि मैं दीक्षा के लिए प्रार्थना करूँ या नहीं। उन सबों ने इशारे से ही नकारात्मक उत्तर दिया, परंतु ईश्वर दर्... शर्मा जी के यह बर्दाश्त के बाहर था कि यह दीक्षा की प्रार्थना न करें। श्री शर्मा जी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि हे प्रभो! "आप इस नालायक को भी अपने शरण में रखते हुए योग दीक्षा देने की कृपा करें।" अंतिम शब्द कहते–कहते इनकी आँखें छलछला (भर) गयी, और इनका गला अवरूद्ध हो गया। श्री गुरुदेव भगवान ने अपनी धोती के कोर से इनके आँसू पोछे एवं कहा कि लल्ला! कल गुरुपूर्णिमा का पर्व है तुम अपने भाइयों से पूछकर दीक्षा का सामान जुटा लो कल ही तुम्हारी योग दीक्षा होगी।

दूसरे दिन जिस दिन गुरुपूर्णिमा थी इनकी दीक्षा श्री सिद्धगुफा सधाई धाम के गुरुभवन में हुई और गुरुदेव ने इन्हें आदेश दिया कि लल्ला! गुफा में जाकर ध्यान में बैठो और कम से कम एक घण्टे बैठे रहना। ध्यान में इन्हें लोक लोकान्तरों, दादा गुरुदेव और भगवान भोलेनाथ आदि के दर्शन हुए और ये लगभग साढ़े तीन घण्टे बाद ध्यान से उठकर श्री गुरुदेव के चरणों में साष्टांग प्रणाम किये। आराध्यदेव जी ने इनकी पीठ थपथपाते हुए आशीर्वाद दिया और कहा कि लल्ला! नित्य नियम से जप और ध्यान किया करो। अब तो योगेश्वर द्वय की कृपा से इनकी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए रहीम कवि की दो पंक्तियाँ पर्याप्त हैं:–

रहिमन बात अगम्य की कहन सुनन की नाहिं।
जे जानत ते कहत नहीं, कहत सो जानत नाहिं।।

और इनके मनोभाव इस प्रकार के हैं –

अब प्रभु कृपा करहुँ एहि भांति।
सब तजि भजन करहुँ दिन राति।।

सुख का मूल – धर्माचरण

आचार्य वाग्भट बताते हैं कि संसार का कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है, जो दुःख चाहता हो, सभी सुख चाहते हैं और उनकी चेष्टा भी सुख–प्राप्ति के निमित्त ही होती है, पर वह सुख प्राप्त होता है – धर्माचरण से , सदाचार के अनुपालन से। अतः कल्याणकामी को चाहिए कि वह सतत् धर्माचरण में तत्पर रहे –

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्।।

श्री कृष्णचन्द्र शर्मा व श्री रामकृष्णा कात्यायन सिद्धिभाई को

श्रद्धांजलि

श्री रामकृष्ण कात्यायन सिद्धिभाई

जिला मण्डी हिमाचल प्रदेश ब्राह्मण वंश कात्यायन शिरोमणी स्व. रामकृष्ण कात्यायन मेरे बड़े गुरुभाई अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जी महाराज के प्रति अनन्य श्रद्धा रखने वाले और गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन महाराज जी के कृपा पात्र थे। मण्डी से योगराज जी ने मुझे दूरभाष पर सूचना दी कि उनका देहावसान हो गया है। इस समाचार ने हमारे परिवार को शोक संतप्त किया। अब भविष्य में श्री रामकृष्ण कात्यायन 'सिद्धिभाईजी' के सरस भजन सुनने को नहीं मिलेंगे। सिद्धिजी अक्खड़ प्रवृति के जन्मजात योगारूढ़ शिष्य थे। उनका अक्सर सभी बड़े-छोटे गुरुभाईयों से हठ योग को लेकर 36 का आंकड़ा सदैव रहा। जब बारिश होती तो बिना छाता लिये और बारिश न होती तो छाता लिये यही उनका अजीब रहस्यमयी व्यवहार रहा। एक बार का प्रसंग सिद्धयोग के पाठकों को सुनाना चाहता हूँ कि मैं और सिद्धि भाई दोनों राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय नेरचौक भंगरोटू (मण्डी) में कार्यरत रहे। सिद्धिजी संगीत के अध्यापक थे। एक बार भंगरोटू स्कूल में एक संत ने 3 घण्टे तक छात्र-छात्राओं को लम्बा चौड़ा भाषण दिया। जब भाषण समाप्त हुआ तो सिद्धि जी ने उक्त महात्मा से पूछा कि आपके भाषण का क्या असर हुआ ? महात्मा जी ने बड़ी मुश्किल से सिद्धि भाई के पैर छूकर क्षमा याचना मांगी। यही नहीं सिद्धि भाई शारीरिक योग बल भी रखते थे। एक बार स्कूल में दो गुटों में टक्कर हुई दोनों और लहुलुहान होने को था ऐन वक्त पर सिद्धि जी प्रकट हुए और तीन को उन्होंने टांगों में जकड़ कर दो को हाथ की पकड़ से मूर्छित कर हुड़दंग मचाने वालों को भगा दिया। सन् 1988 में श्री सिद्धगुफा सवांई आगरा में, मैं और सिद्धि जी प्रभु जी की जन्म शताब्दी पर पधारे। रात को सिद्धिजी अजीब सी आवाजें निकालते रहे, मैं डरता रहा। जब प्रात: मैंने पूछा कि आप क्यों चिल्ला रहे थे। उन्होंने जवाब दिया कि प्रभु रामलाल जी मुझे आकाश गमन करा पहाड़ियों से गुजार रहे थे इसलिए मैं जोर-जोर से चिल्ला रहा था।

भाई योगराज, गुण प्रकाश, स्व. बेसर, स्व. प्रकाश इन सबको अपनी हठ प्रवृत्ति से सिद्धि भाई खूब छकाते रहे। मैं योगराज जी को कहता सिद्धि भाई का रहस्य जानने की कोशिश मत करो। खैर आज सिद्धि भाई जी नहीं हैं किन्तु उनकी याद हमेशा रहेगी। प्रभुजी उनको योगजनित शांति दें।

मण्डी शहर के प्रथम योग प्रचारक भाई - कृष्ण चन्द शर्मा

हमारे एक वरिष्ठतम गुरुभाई *कृष्ण चन्द शर्मा* बहाली वालों का 2 मार्च को देहावसान

हो गया। वे लगभग सन् 1965 में चण्डीगढ़ में योग दीक्षित हुए थे और योग प्रचार एवं गुरु महिमा के प्रचार में निरन्तर लगे रहे। हिमाचल प्रान्त का सारा योग प्रचार उन्हीं के परिश्रम का फल था। उन्होंने पूरे हिमाचल में गुरुदेव के कार्यक्रम कराये। उन्हीं के परिश्रम से गुरुदेव का 6-7 बार मण्डी में कार्यक्रम आयोजित हुआ और सैकड़ों संस्कारी योग के अमर पथ के पथिक बने और गुरुचरणों के चंचरीक बने। आज वे हमसे विदा हो गये हैं। श्री प्रभु जी उन्हें अपने चरणों में स्थान दें और दुःखी जनों को शान्ति प्रदान करें।

सूर्य

जीवन की रक्षा करने वाली सभी शक्तियों का मूल स्रोत सूर्य है। 'सूर्यो हि भूतानामायुः।' समस्त चराचर भूतों का जीवनाधार सूर्य है। यदि सूर्य न होते तो हम लोग एक क्षण भी जीवित न रह पाते। जीवन में सूर्य-रश्मियों का महत्व बहुत अधिक है। सूर्य की किरणें शरीर के ऊपर पड़ने से हमारे शरीर के अनेकों रोग-कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

सूर्य के प्रकाश से रोगोत्पादक शक्ति नष्ट हो जाती है। सूर्य से आरोग्य-प्राप्ति के विषय में अथर्ववेद में लिखा है-

मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते।

सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः।।

(5/30/15)

अर्थात् हे जीव! तेरा प्राण विनाश को न प्राप्त हो और तेरा अपान भी कभी न रुके अर्थात् तेरे शरीर के श्वास प्रश्वास की क्रिया कभी बंद न हो। सबका स्वामी सूर्य-सबका प्रेरक परमात्मा तुझे अपनी व्यापक बलकारिणी किरणों से ऊँचा उठाये रखे- तेरे शरीर को और जीवनी - शक्ति को गिरने न दें।

सूर्य का प्रभाव मनुष्य के शरीर पर मन पर, बहुत गहरा पड़ता है। चिकित्सकों का मत है कि सूर्य-रश्मि के सेवन से प्रत्येक प्रकार के रोग शान्त किये जा सकते हैं। यजुर्वेद में कहा गया है कि चराचर प्राणी और समस्त पदार्थों की आत्मा तथा प्रकाश होने से परमेश्वर का नाम 'सूर्य' है 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' अतएव इन्हें वेद में 'जीवनदाता' कहा गया है।

योग - आसन

त्रिकोणासन

यह आसन भी पूर्ववत खड़े होकर ही किया जाता है, क्योंकि इसके करने से करने वाले के शरीर की आकृति त्रिभुजाकार बन जाती है। अतः इस आसन का नाम त्रिकोणासन है।

विधि

समान भाव से सीधे खड़े होकर अपने दोनों पैरों के मध्य में लगभग दो या तीन फुट का फासला कर दें। किन्तु पैरों के तनाव में कोई कमी न आये, इसके बाद अपने आप को बाईं ओर झुका दीजिए, अपने बायें हाथ को बिलकुल तनाव के साथ नीचे की ओर लाकर अपने बायें पैर के अँगूठे को स्पर्श कीजिए। यह ख्याल अवश्य रखें कि पैर एवं स्पर्श करने वाले हाथ में कोई

शिथिलता न आए (कोई सिकन न पड़े) उधर अपने दाहिने हाथ को सिर के ऊपर से घुमाकर तनाव के साथ बाईं ओर झुकाकर सीधा रखें। इसी प्रकार से दूसरी ओर के पैर व भुजा से अभ्यास कर, प्रथम दिन के अभ्यास में पैर का अँगूठा न भी छुआ जा सके तो भी कोई बात नहीं, किन्तु तनाव में कोई शिथिलता न आए, इसी का नाम त्रिकोणासन है।

लाभ

मेरुदण्ड पर तनाव पड़ने से रीढ़ की हड्डी में होने वाली बीमारियों के लिए लाभप्रद है। गृध्रसी आदि वायु इसके बराबर अभ्यास करने से दूर होती है। (गृध्रसीवात– जो वायु नितम्ब भाग से लेकर पाद तल तक बराबर कष्ट देती रहती है। बड़ा असह्य दर्द पैदा करती है। इसके अतिरिक्त उस गृध्रसी वायु के लिए यह आसन परम हितकर है) पाचन क्रिया सुधरती है, निरन्तर अभ्यास करने से भूख बढ़ने लगती है। शौच खुलासा होने लगता है। जिनको इस प्रकार की तकलीफ हो उनके लिए यह आसन परम श्रेयस्कर है।

व्यायाम का महत्व और आवश्यकता

धर्म–शास्त्रों में व्यायाम को अत्यावश्यक बतलाया गया है। साधु–सन्यासी, ऋषि, साधक ही नहीं, प्रत्युत मनुष्य मात्र के लिये व्यायाम करना आवश्यक है। हमें नियमित व्यायाम द्वारा रक्तशोषण करने वाले सभी रोगों के कीटाणुओं और बुरे विचारों को मन से सदा दूर रखने तथा ब्रह्मचर्य–पालन के द्वारा अपनी शारीरिक शक्तियों को दीर्घकाल तक अपने शरीर में बनाये रखने की भरपूर चेष्टा करनी चाहिए।

हिन्दू –धर्म में योग का अत्यधिक महत्व है। योगासन योगविद्या के अंग हैं। योगासन सभी व्यायाम–पद्धतियों में उपयोगी सिद्ध हुए हैं। अन्य व्यायामों से शरीर के कुछ ही भाग विकसित होते हैं, किन्तु विभिन्न योगासन करने पर शरीर का सर्वाङ्गपूर्ण व्यायाम हो जाता है। नियमित रूप से योगासन करने से मानव–शरीर पुष्ट और सुन्दर बनता है, शक्ति और स्फूर्ति आती है तथा शरीर में क्रियाशीलता बनी रहती है। योगासन मनुष्य के बाहरी और आन्तरिक स्वास्थ्य की वृद्धि और सुरक्षा में हेतु है। इनसे चंचल मनोवृत्तियों का निरोध होता है।

धर्म–शास्त्रों में टहलना सबके लिये, विशेषत: वृद्धों के लिये उपयोगी व्यायाम बतलाया है। याद रहे, प्रात:कालीन प्राणवायु सूर्योदय के पूर्व तक निर्दोष बनी रहती है। अत: धर्म में रुचि रखने वालों को प्रात:काल जल्दी उठकर, स्नान करके टहलने जाना चाहिए – प्राणवायु का सेवन करना चाहिए। इससे स्वास्थ्य और आरोग्य स्थिर रहता है।

श्री गीतामृत - पदावली

अध्याय – 10

वेदों में हुँ सामवेद मैं, औ' देवों में इन्द्र महान्।
इन्द्रियगण में मन हूँ अर्जुन! मुझे चेतना सबकी जान।। 22।।

मैं रुद्रों में शंकर हूँ औ' यक्ष–राक्षसों में धनराज।
वसुओं में हूँ अग्निदेव मैं, गिरियों में सुमेरु गिरिराज।। 23।।

पुरोहितों में सबसे ऊपर, अर्जुन! मुझे वृहस्पति जान।
सेनापतियों बीच स्कन्द मैं तथा सरों में सागर मान।। 24।।

महर्षियों में भृगु मैं, अर्जुन! शब्दों में हूँ ओम् महान्।
मैं जप–यज्ञ सभी यज्ञों में, अचर वृन्द में हुँ हिमवान्।। 25।।

वृक्षों में अश्वत्थ तथा ऋषिदेव वर्ग में नारद तात्।
तथा चित्ररथ गन्धर्वों में, कपिल सिद्ध पुरुषों में ज्ञात।। 26।।

उच्चैःश्रवा तुरंगों में हूँ, अमृत से जिसका उद्‌भव।
तथा गजों में ऐरावत मैं, नृपति नरों में, नरपुङ्गव।। 27।।

वज्र मुझे अस्त्रों में जानो, कामधेनु गौओं में, तात।
जनन हेतु मैं कामदेव हूँ, सर्पों में वासुकि विख्यात।। 28।।

नागों में हूँ शेषनाग मैं, जल–देवों में वरुण महान्।
मुझे अर्यमा पितरों में, यमराज शासकों में तू जान।। 29।।

दैत्यों में प्रह्लाद तथा मैं ग्रसनेवालों में हूँ काल।
पशुओं में मृगराज, धनंजय! विहगों में हूँ गरुड़ विशाल।।30।।

शीघ्र–गामियों में मारुत हूँ शस्त्र–धारियों में हूँ राम।
तथा मगर हूँ मैं मत्स्यों में, नदियों में गंगा अभिराम।।31।।

आदि, मध्य औ' अन्त सभी का, मैं ही जाता पार्थ! कहा।
मैं वक्ता का वाद तथा विद्याओं में अध्यात्म महा।।32।।

मुझे 'अकार' सभी वर्णों में, 'द्वन्द्व' समासों में तू जान।
अक्षय काल, चतुर्मुख ब्रह्मा, हे अर्जुन! मुझको ही मान।।33।।

जीवन हर्ता मैं मृत्यु सभी की, होने वालों का उद्भव।
स्मृति, धृति, कीर्ति, क्षमा, श्री, नारी–वाणी नरपुंगव।।34।।

बृहत्साम मैं सामवेद में, छन्दों में गायत्री, तात।
मार्गशीर्ष हूँ मैं मासों में, ऋतुओं में बसन्त विख्यात।।35।।

छलियों का हूँ द्यूत, पृथासुत! तेजस्वी का तेज महान्।
सत्वशील का सत्व तथा तू जय, निश्चय मुझको ही जान।।36।।

वासुदेव मैं यादव–कुल में तथा व्यास हूँ मुनियों में।
अर्जुन हूँ मैं बीच पाण्डव कवि उशना हूँ मैं कवियों में।।37।।

दण्ड मुझे शासक का अर्जुन! नीति जयेच्छुक की तू जान।
मैं हूँ मौन सभी गुह्यों में, ज्ञानी जन का मैं ही ज्ञान।।38।।

मैं हूँ प्राणि मात्र का कारण, 'बीज' जिसे ज्ञानी कहते।
जीव चराचर कहीं जगत् में, मेरे बिना नहीं रहते।।39।।

मेरी दिव्य विभूति–वर्ग का मिलता पारावार कहाँ।
अतः कहीं कुछ मुख्य विभूति, तब दिग्दर्शन–हेतु यहाँ।। 40।।

जहाँ किसी में देखो, अर्जुन! वैभव, लक्ष्मी तथा प्रभाव।
मेरे तेज–अंश से उसका हुआ समझ लो प्रादुर्भाव।। 41।।

किन्तु प्रयोजन क्या है, अर्जुन! अधिक जानने का विस्तार।
केवल एक अंश से मेरे, व्याप्त सभी है यह संसार।। 42।।

('श्रीगीतामृत–पदावली' का विभूति–योग नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण)

अध्याय – 11

अर्जुन उवाच

कृपया जो अध्यात्म विषय का परम गुप्त यह भेद कहा।
यह सब सुनकर हे भगवन्! अब मोह न मुझको लेश रहा।। 1।।

पूर्ण रूप से तुमसे मैंने सुना जगत् का प्रभव–प्रलय।
मुझे विदित अब कमलनयन! तव महिमा दिव्य और अक्षय।। 2।।

जैसा मुझको बतलाया, है ठीक तुम्हारा वैसा रूप।
मुझे देखने की इच्छा है ईश्वरीय तव रूप अनूप।। 3।।

उसे देखने की यदि भगवन्! मुझमें तुम क्षमता पाओ।
योगेश्वर! वह नित्य–रूप तव कृपया मुझको दिखलाओ।। 4।।

श्रीभगवानुवाच

देखो रूप मेरे तुम अर्जुन! जो हैं शतशः तथा हजार।
अगणित तथा दिव्य हैं जिनके वर्ण तथा आकार-प्रकार।।5।।

वसु, आदित्य, रुद्रगण, मारुत तथा उभय अश्विनीकुमार।
देखो इनको तथा और भी रूप अदृष्ट अनेक-अपार।।6।।

एकस्थित इस जगत्-मात्र को, सहित चराचर जीव सभी।
तथा और भी जो इच्छा हो, देखो मुझमें, पार्थ! अभी।।7।।

देख नहीं सकते हो अर्जुन! इन आँखों से मेरा रूप।
दिव्य दृष्टि देता हूँ, देखो मेरा योगैश्वर्य अनूप।।8।।

संजय उवाच

हे राजन्! उन योगेश्वर ने ऐसा अर्जुन! से कहकर।
दिखलाया तब उसको अपना ऐश्वर्ययुक्त वह रूप अमर।।9।।

मुख अनेक, आंखे थी अगणित बहु प्रकार के अद्‌भुत, रूप।
गहने दिव्य अनेक अलौकिक, अद्‌भुत, अगणित अस्त्र अनूप।।10।।

माला, वसन दिव्य थे उनके, गन्ध, लेप थे दिव्य सभी।
अद्‌भुत तथा अनन्त, विविधमुख वासुदेव मधुसूदन भी।।11।।

क्रमशः

सवाँई वाले सरकार

– जगदीश राए बंसल ''अधम'', नई दिल्ली, मो.नं. : 9212434003

तर्ज : – रेशमी सलवार कुर्ता....

सवाँई वाले सरकार – भरोसा तेरा है।
तेरे बिना ना जग में – कोई मेरा है।।

मैं हूँ कर्मों का मारा – अब मिला है तेरा द्वारा
तूं है दयालु तारण हारा – तीन लोक उजियारा
शरणा तेरा है।
तेरे बिना ....(1)

मैंने पाप बड़ा कमाया – प्रभु का नाम भुलाया
मन तो मेरा पछताया – हाथ नहीं कुछ आया
भया मन अन्धियारा है। तेरे बिना ....(2)

तू सिद्ध गुफा का वाली – मैं कर बध खड़ा स्वाली
रज है तेरी निराली – मेरी तृष्णा है मतवाली
दिनकर अलबेला है।
तेरे बिना ....(3)

लक्ष्य मेरा था मरणा – मिला गुरुदेव का शरणा
करूँ योग ध्यान धारणा – स्वीकारो मेरी दक्षिणा
''अधम'' अब तेरा है। तेरे बिना ....(4)

भारतीय कला पर सिद्धयोग का प्रभाव

डॉ. राजकिशोरी सिंह, वरिष्ठ प्रवक्ता चित्रकला, एन.एन.डी. महिला महाविद्यालय, कानपुर

भारतीय कला मनोमय जगत को भूतमय जगत से जोड़ता है। यह भी सत्य है कि भूतमय जगत से उत्पन्न वेदनायें मानव के मनोजगत को प्रभावित करती हैं। कला के गुह्य स्वरूप को मनीषियों, संतों, सिद्धों, तत्रविदों ने इस दृष्टिकोण से गहरी चिन्तन प्रक्रिया अपनाया है। क्योंकि इन सबके मूलार्थ में आनन्द की खोज रही है। योग की अन्तरानुभूतियों को रूपायित एव शब्दायित करने की ललक ने सहज ही साहित्य और कला को जन्म दिया है। सिद्धानुकम्पा से साधक के अन्तःकरण में जो दिव्य सम्वेदनाएँ जागृत होती हैं, वह एक तरफ उसकी आध्यात्मिक यात्रा होती है वहीं उन अनुभवों की अभिव्यक्ति कला जगत को समवृद्धि प्रदान करती है।

व्यष्टि चेतना अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति में स्पन्दन होने पर सार्थक एवं उच्चकोटि की कलात्मक अभिव्यक्तियां होती आयी हैं। मानस के प्रारम्भ में ही गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इसी स्पन्दन को स्वानुभूत होने के कारण लिखा है–

यथा सुअंजन अंज दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहि शैल वन, भूतल भूरि निधान।।

अन्तः चक्षु के द्वारा प्राप्त अनुभूतियों की चर्चा वेद, उपनिषद्, आगम, पुराण, रामायण, महाभारत ही क्यों सर्व भारतीय वांङ्मय में ओतप्रोत है। ये विवरण सम्प्रज्ञात ज्योति जनित हैं। भारतीय संस्कृति, कला एवं साहित्य इसी चिति के स्पन्दन से ही परिचालित होता रहा है। भारतीय कला के परम्परागत विकास का इतिहास इस बात को प्रमाणित करता है कि चित्रण तत्व विचार, रस और कल्पनात्मक सौन्दर्य की उत्पत्ति कलाकार के व्यवस्थित चित्त के ऊपर निर्भर करता है।

यहाँ सिद्धयोग का अर्थ है ''कल्याणानां भवतु महता सिद्धये सिद्धयोग''। अर्थात् सिद्धों, सन्तों अर्हतों अथवा अवतारी महापुरुषों की कृपा से सामान्यजन में अकस्मात् अन्तर्दृष्टि अथवा सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में आरूढ़ होना। सिद्धयोग का मार्ग साकार उपासना से प्रारम्भ होकर उत्तरोत्तर निराकार की ओर ले जाता है। साकार उपासना में सहयोगी मूर्ति, चित्र तथा मंत्र व प्रतीकों का प्रयोग है। भारतीय आध्यात्म की यह साकार उपासना ही भारतीय कला का मूल है।

भारतीय कला का तात्पर्य 'भा' अर्थात् भासमान, ज्योतिर्मय, ज्ञान मंडित और 'रतीय' लीन, सन्नाहित या रमा हुआ। ऐसी कला जो आन्तरिक ज्योति में रत होकर रची गयी हो वह

भारतीय कला है। यह आन्तरिक ज्योति योग साधना के द्वारा अथवा सिद्धयोगी की कृपा के बिना सम्भव नहीं है।

वैदिक काल से लेकर गुप्त काल तक की कला, शिल्प, स्थापत्य, संगीत, साहित्य एवं नृत्यकला सभी "रसो वास:" उस आनन्दघन की ही उपासना का माध्यम रहा है। इसीलिए इतना स्पन्दनात्मक तथा सजीव है। यह अन्तर साँची, अजंता, एलोरा के चित्र एवं मूर्ति की मिश्र या रोमन रचनाओं की तुलना से स्पष्ट हो जाता है।

वैदिक काल से लेकर आज तक यज्ञ–वेदियों के निर्माण की कला (ज्यामितिकीय रूप रेखा) ऋषियों एवं योगियों की अन्त:दृष्टि का ही परिणाम है। इसी प्रकार सामान्य जन को सुचारु रूप से जीवन जीने के लिए एवं उनके मंगल हेतु सम्प्रज्ञात समाधि में जो कुछ विलक्षण देखा उसे ज्यों का त्यों अथवा प्रतीकों के माध्यम से प्रचारित किया, जो आज तक तीज–त्यौहारों एवं विवाह तथा मांगलिक अवसरों पर घरों एवं दीवारों तथा मन्दिरों में रचा जाता है। ये प्रतीक अक्षुण हैं और आजतक अपरिवर्तनीय अवस्था में चले आ रहे हैं। भारतीय संस्कृति के विकास में वैदिक युग को महर्षि अरविन्द ने प्रतीकात्मक युग कहा है। ये प्रतीक सूर्य, चन्द्र, वरुण, इन्द्र, सर्प, कमल, शंख आदि भौतिक न होकर उनके पीछे काम करने वाली शक्तियों से था।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जो मानव का पुरुषार्थ बताया जाता है। उसे हम अध्यात्म के द्वारा कला, साहित्य, दर्शन के द्वारा ही साधते हैं। कुछ लोगों के मन में भारतीय चित्र एवं मूर्तियों में नग्नता का प्रश्न उठता है? इसका उत्तर यह है कि नंगापन मन की एक आदिम वृत्ति है। हमें सरलता, निर्दोष चित्तता में नग्नता भी सार्थक दिखाई देता है। वह भी एक सौन्दर्य का रूप लेता है। अहंकार शून्यता में ही आत्म–स्फुरण का बोध है। तीर्थंकरों की जैन मूर्तियों में नग्नता का अभिप्राय मात्र है अहंकार शून्यता, आत्म–प्रतिष्ठा और शिशु भाव की निर्दोष चित्तता।

शैव–योग, बौद्ध एवं तंत्र साधना में षट–चक्रों सम्बन्धी आकृतियों एवं उनमें मातृकाओं के स्वरूप चित्रण अपूर्व है तथा कला की दृष्टि से गहन गवेषणा का विषय है। बिन्दु–नाद–कला ही सूक्ष्म जगत को स्थूल जगत से जोड़ता है। सारी सृष्टि संरचना, स्थिति और संहार जहाँ अव्यय अव्यक्त ईश्वर की करिश्माई कार्यवाही है वहीं मानव भी इन्हीं बिन्दु–नाद–कला के स्वरूप द्वारा जगत में स्वतंत्र रूप से सृजन करने की शक्ति रखता है। जहाँ भारतीय कला का सृजन जो आभ्यान्तरिक अनुभूतियों को स्थूल रूप में सम्प्रेषित करता है वहीं दूसरी ओर स्थूल सृजन (चित्र, मूर्ति, सद्साहित्य) का मानव के मन:चेतना पर कैसा प्रभाव छोड़ता है, यह सब विचारणीय है।

सामान्य जन आसन, प्राणायाम तथा मुद्राओं एवं क्रियाओं को ही योग समझते हैं। जबकि महर्षि पतंजलि ने "योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:" द्वारा योग को परिभाषित किया है। मन कि वृत्तियों का सम्पूर्ण निरोध योग है।

मनुष्य का म संकल्प–विकल्पनात्मक है। संकल्प विकल्प का प्रवाह ही वृत्तियाँ हैं। ये

वृत्तियाँ मन की एकाग्रता के साथ ही शांत होने लगती हैं। इस एकाग्रतावस्था वाले मनुष्य के आभ्यान्तर में अघटित-घटित होने लगता है। ज्यों-त्यों मन गहरी एकाग्रता की ओर बढ़ता है, अन्तःकरण आह्लाद पूर्ण होता जाता है। मन की एकाग्रता की विशेषता को चार स्तरों में बाँटा गया है। पहला वितर्कानुगत योग इसके अन्तर्गत योगी आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पंच महाभूतों से सम्बन्ध रखने वाले वेदनाओं को अपने मन:चक्षु से अनुभव करता है। पृथ्वी तत्व में पहाड़, सुरम्य वन, मनोहारी नैसर्गिक दृश्य, भुवनों आदि का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। इसी प्रकार स्वर्गादिक देवी-देवता यक्ष किन्नर आदि तथा अन्य ग्रहों के जीवों एवं मानवेतर दृश्यों को आत्मसात करता है। आकाश तत्व के साक्षात्कार करने पर दिव्य-नादोत्पत्ति से योगी का मन बलात मुग्धावस्था को प्राप्त होता है।

दूसरे तल पर विचारानुगत में मन पंच तन्मात्राओं के सूक्ष्म अनुभूतियों से भर उठता है। अन्तःकरण अनिर्वचनीय आनन्द के द्वारा चिदाभास को अनुभव करता है।

यहाँ मानस में अब प्रकृति के गुह्यात-गुह्य रहस्य साधक को ज्ञात होने लगते हैं। ऐसे साधक में अतीन्द्रिय बोध का विकास होता है। उसे दूर-दृष्टि, दूर-श्रवण, दूर-स्पर्श की योग्यता प्राप्त होती है। अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा जितना चित्त समाहित होता जाता है, उसे आह्लाद कारक सूक्ष्म विषयों के साक्षात्कार से आनन्दमय कोष की पुष्टि होती है। एकाग्रता की पराकाष्ठा पर मन की वृत्तियाँ समाप्त प्राय हो निरोधावस्था में अनन्त आनन्द, दिव्य आत्मतेज के साथ बुद्धि प्रातिभ ज्ञान से आलोकित हो उठता है।

यह आश्चर्य पूर्ण है कि पाश्चात्य एवं भारतीय मनीषियों ने दर्शन तथा साहित्यिक दृष्टि से योग, तंत्र का गहन अध्ययन किया है परंतु योग की विभूतियों के बारे में या तो वे मौन हैं अथवा कुछ गिने-चुने पालब्रण्टन (सर्च इन सेक्रेण्ड इण्डिया), जान उडरफ, मादाम ब्लोवात्सकी, एनी बेसेण्ट जैसे योगानुभूति सम्पन्न विचारकों ने अल्प में ही सही योग एवं तंत्र का कला पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा अपने कृतियों में कहीं-कहीं की है। स्फुटरूप में उन्नीसवीं व बीसवीं शताब्दी के महान चिंतक श्री विवेकानन्द, योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी, श्री मुक्तानन्द, योगानन्द जी, श्री गोपीनाथ कविराज तथा ओशो के साहित्य में भारतीय कला के मौलिक स्वरूप के बीज सिद्धयोग के परिपेक्ष में बहुतायत से वर्णित हुए हैं।

उपरोक्त वर्णित महापुरुषों की कृतियों के अध्ययन से दो तथ्य स्पष्ट होते हैं। पहला गुरु-परम्परा और दूसरा शिष्य की पात्रता। आज भी भारतीय कला की, सभी विधाओं में गुरु-परम्परा से ही शिष्यों व प्रशिक्षुओं को ज्ञान प्राप्त होता आ रहा है। दूसरी बात सिद्धयोगियों का यह है कि उनके द्वारा सद पात्र शिष्य में अपने मनोभावों को स्फुरित करने का सामर्थ्य। चित् का प्रवाह अगाध जल में उठने वाली तरंग की तरह है। यह शक्ति निस्सीम व अपरिमेय है। जो आगे चलकर विचार एवं इच्छाशक्ति का रूप ग्रहण करती है। शब्द के रूप में प्रवाहित एवं प्रसारित होने पर विचार ही स्थूल रूप ग्रहण करता है। यह विचार ही शब्द की आत्मा तथा सभी

कलाओं का मूलाधार है।

शक्ति सम्पन्न महापुरुष शब्दों की जगह अपनी दिव्य शक्ति द्वारा सुपात्र शिष्य को उसके मानसिक तल पर ही अपने विचारों को मूर्त रूप देने में समर्थ होते हैं–

''गुरोस्तु मौन व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशया''

सिद्ध महापुरुषों की चित् तरंग जनमानस को अलक्षित रूप में आकृष्ट करती रहती है। उनकी सहज वाणी कालजयी है। वैदिक ऋषिगण, सभी योगी प्रवर, अवतारी महापुरुष बुद्ध, महावीर, कबीर, नानक, सुकरात, कन्फ्युशियस, ईसा, मोहम्मद आदि इसके प्रमाण हैं। इसका कारण इनका समाहित चित्त ही है। इनके प्रकृतस्थ चित्त की दशा में लोगों को जगत के व्यवहारिक आचरण का उपदेश प्राप्त होता है।

वैदिक–काल के यज्ञ वेदियों के गूढ़ एवं विशुद्ध ज्यामितीय संरचनाओं के पीछे ऋषियों की दिव्यानुभूति ही रहा है। योग विद्या अनादि काल से भारतीय समाज में परोक्ष, अपरोक्ष रूप में सदैव विद्यमान रहता आया है। भगवत् गीता में स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने कहा है –

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।1।।
स एवायं मया तेऽद्य योग: प्रोक्त: पुरातन:।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।2।।

योगेश्वर श्री कृष्ण के कथन से यह तथ्य ज्ञात होता है कि योग विद्या पुरातन एवं उनके द्वारा महर्षियों एवं राजर्षियों को परम्परा रूप से प्राप्त होती रही है। इसी ग्रंथ में योगेश्वर श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिव्य दृष्टि प्रदान कर दिखाये गये। अपने विश्वरूप का आधुनिक काल में भी कला की दृष्टि से अपूर्व स्थान प्राप्त है। जिस विराट रूप का दर्शन अर्जुन को हुआ वह शक्तिपात के द्वारा सम्भव हुआ। द्रष्टव्य है "दिव्यं ददामि ते चक्षु: पश्य मे योगमैश्वरम्"।

सभी काल खण्डों में शक्ति चैतन्य की यह प्रक्रिया सदैव गोप्य रखा गया है। क्योंकि अपात्र को प्राप्त अलौकिक शक्तियाँ सदैव समाज, संस्कृति तथा कला के लिये विध्वंसक सिद्ध हुई हैं। अत: शक्तिपात के लिए पात्रता की परख आवश्यक शर्त रहा है। सद्गुरु द्वारा पात्र शिष्य में किया गया शक्ति निक्षेप उसकी कुण्डलिनी का जागरण करता है। शिष्य के लिए एक अपूर्व अन्तर जगत् का द्वार खुलता है। वह एक नयी दृष्टि पाता है। सिद्धयोग की यह विशेषता है कि कुण्डलिनी जाग्रत होने के बाद गुरु उपदिष्ट साधना का निरन्तर, उत्साह पूर्वक, धैर्य और श्रद्धा से (कला में निष्णात् होने के लिए भी यही मूलभूत तथ्य स्वीकृत है) अभ्यास करने पर चित्–शक्ति का विकास स्वयमेव होने लगता है। मानव काया में कुण्डलिनी समष्टि में व्याप्त चित्–शक्ति का ही घनीभूत रूप है। स्पन्दन शास्त्र पिण्ड व ब्रह्माण्ड के ऐक्य का निरूपण करता है। इसकी पुष्टि योग दर्शन भी करता है। योगी अपनी काया के भिन्न–भिन्न केन्द्रों पर

जब संयम करता है, उसे प्रकृति में निहित तमाम रहस्यों का ज्ञान तथा अणिमादिक सिद्धियों की प्राप्ति होती है। "यस्मिनज्ञाते सर्वमिदम ज्ञातं भवति सा योग विद्या"।

दीक्षा–प्रक्रिया

जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, सद्गुरु द्वारा शक्तिपात प्राप्त साधक को शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक स्तर पर अनेक प्रकार के अनुभव होने लगते हैं। उस साधक को यौगिक क्रियाएँ, अपने विचारों में परिवर्तन और आध्यात्मिक विषय की सूक्ष्म समझ होने लगती है। दीक्षा के भी भेद हैं सिद्ध सद्गुरु कर स्पर्श द्वारा उपदेशात्मक वाणी द्वारा तथा दृष्टि निक्षेप अथवा मानस संकल्प से ही शक्ति का संचार करते हैं। दीक्षा की शास्त्रीय परिभाषा 'दीयते ज्ञानम् क्षीयतेप्रकाशा वर्णनम्' बताया गया है। दीक्षा द्वारा प्राप्त शक्ति का स्फुरण और प्रकटीकरण भिन्न–भिन्न व्यक्तियों में अलग–अलग तरीकों से होता है। अतः ये अनुभव पूर्व जन्म के संस्कार से प्रभावित होने के कारण अलग–अलग स्तर के होते हैं। शाक्त तंत्र शास्त्र में इन प्रारम्भिक अनुभव भेदों के आधार पर दीक्षा भेद रूप में क्रियावती, कलावती, वर्णमयी तथा ज्ञानमयी का विवरण आया है।

क्रियावती दीक्षा –

इस दीक्षा के परिणामस्वरूप जाग्रत कुण्डलिनी शक्ति के स्फुरण में यदि साधक का नाड़ी तंत्र शुद्ध नहीं हुआ तो यह चिति शक्ति प्रथमतः नाड़ी के मल दोषों के शोधन हेतु साधक द्वारा ध्यानाभ्यास के दौरान स्वाभाविक अचेक्षित आसन, प्राणायाम बंध एवं भिन्न–भिन्न मुद्राओं को कराती है। नाड़ी तंत्र के परिमार्जन होने की क्रिया सामान्य व्यक्ति की दृष्टि में जहाँ श्रम साध्य व कष्टकर मालूम होगी वहीं उस व्यक्ति को मन:एकाग्रता तथा चित्तशक्ति के प्रभाव के कारण न ही उसे कष्ट का भान होता है और दीर्घ समय तक करने से न वह थकता है कारण मात्र यह कि साधक की काया के कोषों में चित्त शक्ति आनन्द की हिलोरें भर देता है, ऐसी अवस्था में चिति के प्रसाद व स्वातन्त्र्य से स्फुरित नृत्य, सामगान, भावावेशित अभिनय के प्रकरण देखने को मिलते हैं।

कलावती दीक्षा –

इस दीक्षा से साधक में चित शक्ति कुण्डलिनी सुषुम्णा में प्रवेश करके उसके दाँये भाग में अवस्थित चित्रा नाड़ी को जब स्पर्श करती है तब साधक के ज्योति दर्शन दिव्य लोकों तथा वहाँ के वासियों की जीवन चर्या भाषा एवं विज्ञान का बोध होता है। साधन के परिपक्वता की परीक्षा ये सूक्ष्म लोक वासी किया करते हैं। चित्त शक्ति के विकास में ये सूक्ष्म जीवी काम, लोभ, अहंकार के प्रसंग सामने लाकर अंतराय खड़ा कर देते हैं। किसी–किसी को संस्कार वसात् निम्नयोनिगत् जीवों के अंतमन्त्त वीभत्स भयावह दृश्य का साक्षात्कार होता है। सच तो यह है कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तूर्य सभी अवस्थाओं में चिति की ही क्रिया संसर्जित है। सभी प्रतीकों बिम्बों, टोट्मों का सृजन इन्हीं मानसिक अवस्थाओं में हुआ है।

सिद्धयोग सम्बन्धित ग्रन्थों के परिशीलन से जो तथ्य ज्ञात होता है वह यह है कि कुण्डलिनी महाशक्ति की व्यापकता जड़, चेतन सभी में है। बाह्य जगत से अन्तर्जगत श्रेष्ठ है। क्योंकि अन्तर्जगत में चिति स्वातन्त्रय अधिकाधिक होते हुए अनन्तत्व को प्राप्त होता है। *''प्रत्यभिग्ज्ञाहृदय' में इसे चिति: स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतु:।''* अर्थात् चिति वह है जो अपनी स्वतन्त्रता से जगत को रचती है। कलाकार, साहित्यकार, दार्शनिक, वैज्ञानिक सभी में इसी चिति शक्ति के विकास से सर्जना का प्रतिफल मिलता है। बया के घोंसलों तथा जीवों के विभिन्न क्रिया वैचित्रय आदि में।

वर्णमयी दीक्षा –

इस दीक्षा में चिति प्रसाद द्वारा उच्च मनोभूमिका में आरूण साधक प्रज्ञा प्रसाद के फलस्वरूप ऋचाओं एवं मंत्रों का प्रत्यक्षीकरण, काव्यस्फूरणाना तथा विज्ञानमय लोकों से सम्बन्धित रहस्य उजागर हो उठते हैं ऐसे महामानव रूप में रूपान्तरित व्यक्तित्व के सम्मुख शब्द, अर्थ भाव सभी मूर्तिमान हो उठते हैं। वाणी के सभी रूप परा पश्यन्ति, मध्यमा, बैखरी, उसके मनों नेत्रों के सम्मुख साकार हो उठते हैं। मध्यकालीन संतों, जिनमें पठित, अपठित, साक्षर, निरक्षर दोनों सम्मिलित हैं जिनकी काव्य रचना कालजयी है इसका रहस्य कुण्डलिनी के प्रसाद में ही निहित है कबीर, दादू, पलटू, जीवा जैसे अनपढ़ के मर्मस्पर्शी साहित्य सृजन इसके उदाहरण हैं। 'जग कहता पोथी की लेखी मैं कहता आँखन की देखी' कबीर का यह कथन उपर्युक्त विचारों का गहन प्रमाण है।

उपरोक्त तथ्यों से यह प्रमाणित है कि जो कुछ हमें भव्य भासता है वह है चिति (कुण्डलिनी) शक्ति का प्रभाव। कलाकार की कलाओं में जो यथार्थ, रस संचार हमें प्राप्त होता है वह कला में कलाकार के चिति स्पन्दन के ही हेतु से है। *रसो वै स:। रसं ह्येवायम् लब्ध्वानन्दि भवति।।* वह परा तत्व रस पूर्ण (आनन्दघन) है। हम उसकी उपासना से आनन्द प्राप्त करते हैं। कला इसका एक माध्यम है।

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि।।

बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि आपत्तिकाल के लिए धन का संग्रह और उसकी रक्षा करे। धन से भी अधिक पत्नी की रक्षा करनी चाहिए। परन्तु धन और स्त्री से भी अधिक अपनी रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि अपना ही नाश हो जाने पर धन और स्त्री का क्या प्रयोजन?

संत मत में सद्गुरुतत्व की महत्ता

प्रो. डॉ. श्री विजयसिंह, गोरखपुर

मध्यकालीन संतों का हम सभी पर बड़ा उपकार है। भारतीय संस्कृति एवं सनातन की ध्वजा को यवनों–विदेशी आक्रमणों से अप्रभावित रख पाना तथा धर्मान्तरण के प्रवाह को रोकने में सफलता, यह सभी कुछ सन्तों के कारण सम्भव हो सका। हमारे आर्ष–ग्रन्थ जो संस्कृत में हैं, उन्हें समकालिक भाषा में अत्यन्त प्रभावी ढंग से मुखर करना भी उन संतों के प्रज्ञा–प्रबोध का ही परिणाम रहा है। जन–जन तक ऋषियों के एकान्त चिंतन को मोतियों की माला के रूप में पिरो कर पहुँचाना तथा पुरातन श्रद्धा, आस्था व आस्तिकता के दीप को बाह्य झंझावातों से बचाकर प्रज्वलित रखना भक्त–हृदय, ज्ञानोद्रेक तथा साधना–सम्पन्न संतों द्वारा ही संभव हुआ है।

संतों का जीवन प्रवृत्तियों में रहते हुए भी निवृत्ति परक रहा है। कर्म का त्याग उनका उद्देश्य कभी नहीं रहा। फल की कामना से मुक्त होना ही उनके उपदेशों का सार रहा है। संतों में साधना रहस्य सद्गुरु अथवा गुरु परम्परा से आया है। सभी संत उन्मुक्त कंठ से सद्गुरु की महिमा को स्वीकारते हैं। सद्गुरु और परमात्मा में अभेद भाव को ही सभी ने स्वयं तथा जन–मानस को बताने की चेष्टा की है। जैसा कि हम देखते हैं कि वेद–सम्मत साधना–पद्धति का सरलीकृत रूप ही संतों ने अपनाया है और आगम–निगम, सर्वत्र सद्गुरु की आवश्यकता, अनिवार्यता को माना गया है। सूत–संहिता में कितने भावपूर्ण भाषा में गुरु के महात्म्य को गाया गया है–

अति वर्णाश्रयी साक्षात्, गुरुणां गुरुरुच्यते।

न तत्समोऽधिको वास्मिन, लोकेऽस्त्येव न संशयः।।

अर्थात् वह अवधूत गुरु वर्णाश्रम से परे है और साक्षात् रूप से वह गुरुओं का भी गुरु है। न तो उससे कोई महान् है और न समकक्ष। संत कबीर ने भी गुरु की महिमा को गोविन्द से अधिक स्वीकारा है–

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पांय।

बलिहारी गुरु आपकी, जिन गोविन्द दियो मिलाय।।

संतमत पर विद्वान लेखकों ने जो लेख लिखे हैं, उन सभी ने संतमत को रहस्यवादी बताया है। चेतना के सूक्ष्म स्तरों को बिना गुरुकृपा अथवा उनके शक्तिपात तथा संरक्षण के थाह नहीं कोई पा सकता। आध्यात्मिक जीवन सामान्य जीवन से भी दुरूह और जटिल है।

सद्गुरु ही साधक को अन्तर्जगत में प्रवेश दिलाते हैं तथा वहाँ आने वाले तमाम अन्तरायों से रक्षा करते हैं। इसलिए कबीर साफ शब्दों में कहते है–

गुरु बिन चेला ज्ञान न लहै।

गुरु बिन इह जग कौन भरोसा, काके संग हावै रहिए।।

संत कबीर ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में सद्गुरु की महिमा बताई है। जो लोग गुरु के सानीप्य में रहते हैं अथवा उनसे स्थूल रूप में कृपा पाते हैं, वे सद्गुरु की महिमा को उतना नहीं अनुभव करते हैं, जितना दूर बैठा हुआ साधक चिन्तन द्वारा सद्गुरु प्रेम में ओत–प्रोत सद्गुरु की कृपा शक्ति संचार का अनुभव करता है–

कबीर गुरु बसै वाराणसी, सिष समन्दर तीर।

बिसरया नहीं बीसरे, जे गुण होय सरीर।।

मानस में और इतर काव्य रचनाओं में संत तुलसीदास ने गलवश्रु होकर सद्गुरु महिमा का गान किया है–

बंदौ गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नर रूपहरि।

महा मोहतम पुंज, जासु वचन रविकर निकर।।

X X X

गुरुपद रज मृदुमंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष विभंजन।।

अथवा राम तत्व को उद्भासित कर सकना जीव के लिए सम्भव नहीं है। जब सद्गुरु के पद–नख से विकरित दिव्य–ज्योति महामोह को नष्ट कर देती है तभी रामतत्व उजागर हो पाता है–

श्रीगुरुपद–नख मणिगण ज्योती, सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।

दलन मोह तम सो स प्रकासू, बड़े भाग्य उर आवहि जासू।।

X X X

सूझहि राम चरित मणिमानिक, गुप्त प्रकट जो जेहि खानिक।

अग्रगण्य संतों की दृष्टि में नामरूप हजारों गुना प्रभावी है और नामरुपी अमर बूटी सद्गुरु द्वारा ही शिष्य को प्रदान होता है। लोकाधिपति व सृष्टिकर्ता तथा देवी–देवता भी सद्गुरु तत्व को भली प्रकार से नहीं जानते हैं। उनमें भी यह सामर्थ्य नहीं है कि उस सत्ता को ठीक–ठीक जान सकें। श्री कबीर के निम्नलिखित भजन में यही भाव निहित है–

गुरु मोहि घुंटिया अजर पियाई।

जब से गुरु मोहि घुंटिया पियाई, भई सुचित मेरी दुचिताई।

नाम औषधि अधर कटोरी, पियत अघाइ कुमति गई मोरी।

ब्रह्मा विश्नु पिये नहि पाये, खोजय सम्भू जन्म गँवाये।

सुरत निरत कर पिये जो कोई, कहँ कबीर अमर होय सोई।

संत कबीर डंके की चोट पर कहते हैं कि सद्गुरु प्रदत्त नामरूपी अमर–अजर करने वाली घूँटी ज्योंही जीव पीता है, तभी से संकल्प विकल्पों का नाश होता है और सुचित अर्थात 'योगश्चित्तवृत्ति निरोध:' की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। श्वास–प्रश्वास से जो इसे निरन्तर पीता रहता है, वह अमर हो जाता है। कुमति 'अविद्या जनित' रागद्वेष, अभिनिवेष का समूलोन्मूलन हो जाता है। अत: महात्मा गरीबदास ने सब कुछ सद्गुरु पर ही न्यौछावर किया है –

सद्गुरु आदि अनादि हैं, सतगुरु मध और मूल।
सतगुरु को सिजदा करूँ, एक पलक नहिं भूल।।

संत दादू ने सद्गुरु की उस महत्ता को पहचाना है, जिसमें सद्गुरु जीव को अपना करके उसे ब्रह्म स्वरूपता प्रदान करते हैं। आवागमन जो काल–प्रेरित है, उससे भी छुटकारा अकाल पुरुष सद्गुरु दिला देते हैं –

दादू काढै काल मुख, अंधेन लोचन देऊ।
दादू ऐसा गुरु मिला, जीव ब्रह्म करि लेऊ।।

पतित हो या अति अधम हो, परन्तु यदि सद्गुरु सत्ता ने अपना लिया है तथा साधक ने अपने निजत्व को सद्गुरु–चरणों में समर्पित कर दिया है तो निश्चय ही उसे आभ्यान्तर बोध एवं आनन्द प्राप्त होना प्रारम्भ हो जाता है। यह आनन्द ऐसा है जिस पर वह स्थूल प्रलोभनों को सहज ही त्यागने को तत्पर हो उठता है। संत तुलसी साहब की विनय भरी सद्गुरु महत्ता को प्रकट करने वाली एक कुण्डली उद्धरणीय है –

बार बार विनती करूँ, सतगुर चरन निवास।
सतगुर चरन निवास, बास मोहिं दीन्हे लखाई।
नित–नित करूँ बिलास, पास घर अपने आई।।
मैं अति पति, मति हीन, दीन देखा मोहिं साँई।
लीन्हा अंग लगाय कहुं, अस कौन बड़ाई।।
तुलसी मैं अति हीन हूं, दीन्ह अगम आवास।
बार–बार विनती करूं, सतगुरु चरन निवास।।

सद्गुरु कृपा अत्यन्त विलक्षण है। उनके चिंतन मात्र से साधक के अन्तर में साधन रहस्य उजागर हो उठता है। लोक–कल्याण में लगे हुए जीव को वे स्वयं सहज–साधन प्रदान कर देते हैं। उनकी चिदात्मिका शक्ति सहज ही सब कुछ करते धरते हुए भी साधक को आभ्यांतर बोध से अनुप्राणित किये रहती है। वे जिसके लिए चाहें उसे सदैव घट में मंत्र का अनवरत उठते बैठते, चलते–फिरते, जागते–सोते भी स्फुरण, स्मरण व सुनाई देता रहता है। सद्गुरु प्रताप को ही ग्रहण कर ब्रह्मा, विष्णु व शिव संसार–चक्र को साधे हुए हैं। गुरु–गीता में

कथन है –

ब्रह्मा विष्णु महेशादि, देवर्षि पितृ किन्नराः।
सिद्ध चारणयक्षाश्च, ह्यन्योऽपि मुनयोजनाः।।

बिना लाग लपेट के संत कबीर ने इस तथ्य को प्रकट किया है। देखें –

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रसाद जा दिन से जागी, दिन–दिन अधिक चली।।
जहँ–जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कुछ करों सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत, पूजौं और न देवा।।
कहों सो नाम, सुनौं सो सुमिरन, खाव पियौं सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौ दूजा।।
आँख न मूँदौ नाक न रूँधौ, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नैनि पहिचानौं, हँसि–हँसि सुन्दर रूप निहारौं।।
कहैं कबीर उनमति रहना, सो परगटि करि गाई।
सुख दुःख से कोई परे, परम पद तेहि पद रहा समाई।।

सद्गुरु की महत कृपा से साधना का अन्त सहज समाधि के रूप में व सद्गुरु स्वरूपता की प्राप्ति में होता है। उस समय अंग–प्रत्यंग की प्रत्येक चेष्टा ही सहज साधना का अंग बन जाता है। प्रज्ञा–प्रसाद पर आरूढ़ बुद्धि, मोह, मद, मत्सरहीन हो चुका होता है। अंतःकरण प्रसादावस्था से आप्लावित हो उठता है। इस उन्मनी दशा में लोकाचार अथवा बाह्याचरण का कोई अर्थ नहीं होता। सिद्ध भाई संसारसिंह की भी ऐसी ही अवस्था थी। सद्गुरु अनुकम्पा को पाकर वे अन्त में सदैव मलंग भाव में सहज समाधि का आनन्द लेते रहते थे। इससे उन्हें बाह्य आरती–पूजन आदि की कोई आवश्यकता ही नहीं थी।

आत्मोत्थान हेतु साधक को सदैव सद्गुरुसानिध्य में अहंकार रहित होना ही मात्र एक साधन है। अहंकार रहित विनम्र सेवाभाव से साधक निश्चित ही साधना के चरम लक्ष्य को प्राप्त हो जाता है। संत चरणदास सभी शिष्यों को सद्गुरु चरणों में पूर्ण समर्पण करने को कहते हैं। साधक पूर्ण निरभिमानी होकर ही सिद्धत्त्व व संभत्व को प्राप्त होता है–

गुरु के आगे राखे माथा, कहै पाप दुख मेटौ नाथा।
मैं अधीन तुम्हारो दासा, देहु आपने चरनन वासा।
यह तन मन लै भेंट चढ़ायो, अपनी इच्छा कुछ न रखो।
जो चाहे सो तुमही करो, या भांडे में तुमही भरो।
भावे धूप–छांह में डारो, भावै बोरो भावै तारो।

गुन–पौरुष कुछ बुधि नहिं मेरी, सब विधि सरन गही है तेरी।

जिनका आपा ना रहा, भये रूप ततसार।
सद्गुरु के मारे मुये, बहुरि न उपजे आय।
चौरासी बंधन छुटैं, हरिपद पहुंचे जाय।।

चरणदासजी का ही दूसरा पद देखें, सद्गुरु की कृपा से साधक किस प्रकार से निहाल हो जाता है –

तन मथुरा अरु मन विन्द्रावन, तामें रास रचाओ।
हिरदे कँवल खिले परकासा, दरसन देखि अधिक हुलसायो।।
गुरु चरनन में सबही तीरथ, सिमटि सिमटि तहँ आओ।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, अपने मस्तक भेंट चढ़ाओ।।

संत सहजोबाई, संत मीराबाई, दादू, पलटू, रैदास, रहीम, रज्जब, नानक, नामदेव, ज्ञानदेव सभी संतों की रचनाओं में मूल मंत्रात्मक संकेत सद्गुरु शरण ग्रहण करना ही बताया गया है। हर एक संत ने अपनी आध्यात्मिक उपलब्धि का श्रेय सद्गुरु कृपा को ही माना है। श्रीमद्भगवद्गीता में जगदात्मा का अपूर्व आदेश है आत्मोपलब्धि हेतु –

तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्व दर्शिनः।।

आपदर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमतां कुत आपदः।
कदाचिच्चलते लक्ष्मीः सञ्चितोऽपि विनश्यति।।

किसी ने किसी धनी से कहा – ''आपत्तिकाल के लिए धन का संग्रह करना चाहिए।'' धनी बोला – ''श्रीमानों पर आपत्तियाँ कब आती हैं?'' वह मनुष्य बोला – ''लक्ष्मी चंचल है, हो सकता है कभी चली जाए।'' धनी बोला – ''यदि ऐसी बात है तो संचित की हुई सम्पत्ति भी नष्ट हो जाती है।''

परमात्मदर्शन किसे और कब होता है?

प्रो. श्री ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसका समाधान उससे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रथम तो यह जानना आवश्यक है कि परमात्मदर्शन किसे कहते हैं? हमें परमात्मा को कहाँ ढूंढना है? परमात्मदर्शन के विषय में हमें अपने सद्गुरुदेव का कथन याद आ रहा है कि–

देहं देवालयं विद्यात् आत्मानं तु शिवं केवलम्।
सोऽहंभावेन पूजयेत्तं एतदेव परमात्मदर्शनम्।।

अर्थात् परमात्मकृपा से प्राप्त स्वस्थ शरीर को ही देवमन्दिर समझना चाहिए और उसमें वास करने वाली प्राणात्मा को ही परमात्मा समझना चाहिए। उसी परमात्मा की सोऽहंभाव वाले बीजमन्त्र से आराधना यानि योगाभ्यास करने पर समाधिसिद्धि के उपरान्त स्वतः परमात्मदर्शन हो जाता है। हमारे वेदशास्त्र इस परम सत्य की पुष्टि करते हैं कि –

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः।
यस्मिन् प्राणः पंचधा संविवेश।।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम्।
तस्मिन् विशुद्धे विभवति एषः आत्मा।।

(मुण्डक उप. 3/9)

एको हंसो भुवनस्य अस्य मध्ये,
स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः।
तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति,
नान्यः पन्था विद्यते अयनाय।।

(श्वेता.उप. 6/15)

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य एष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्नि आत्मा प्रतिष्ठितः।।

(मुण्डक उप. 2/7)

मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीराः आनन्दरूपं अमृतं यद्विभाति।।

(मुण्डक उप. 2/7)

अर्थात् जो समस्त विद्याओं तथा कलाओं का सर्वज्ञाता है और जिसकी महिमा तथा ऐश्वर्य का वेदों तथा शास्त्रों में वर्णन किया गया है, वही परमात्मा समस्त शरीरों का प्राणात्मा है, वही प्रत्येक प्राणी के दिव्य हृदयाकाश में अज्ञेय तथा तिलों में तेल की तरह गुप्त है और वही शरीर की चैतन्यात्मा है, क्योंकि वेदों की यह स्पष्ट घोषणा है कि –

नान्योऽतोऽस्ति दृष्टा नान्योऽतोऽस्ति श्रोता।
नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति बोद्धा।।

(वृह. उप. 3/11)

अर्थात् परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई भी शक्ति न तो दृष्टा है, न श्रोता है, न मन्ता है और न विज्ञाता है। प्रत्येक शरीर में मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को ज्ञानशक्ति तथा कार्यशक्ति परमात्मा से ही मिलती है, किन्तु वह स्वयं इनका विषय तथा दृश्य न होने के कारण अज्ञेय रहता है। सत्य यही है कि आत्मा के नाम से विख्यात परमात्मा ही मन का मन है, प्राण का प्राण है, चक्षु का चक्षु, श्रोत्र का श्रोता, बुद्धि का बोद्धा है। वही जीव के रूप में अन्न में प्रवेश करके जीवसृष्टि का कारण बनता है और सिद्धयोगी उसी को ज्ञानचक्षु के द्वारा आनन्दस्वरूप तथा अमृतस्वरूप में अनुभव करते हैं। आत्मा तथा परमात्मा में जो शब्दभेद है वह इसलिए है कि सृष्टि के संचालन तथा लोकव्यवहार के लिए परमात्मा की मायाशक्ति ने उसे तीन स्वरूपों में मायिक विभाजन के द्वारा गूढ़ बनाया है। प्रथम स्वरूप है कूटस्थ तथा सर्वव्यापी अक्षर ब्रह्म, द्वितीय स्वरूप है जीवात्मा तथा तृतीय स्वरूप है सर्वनियन्ता ईशनीशक्तियों से युक्त परमात्मा। प्रथम दो चैतन्य स्वरूप में आत्मा तथा तृतीय ईश्वररूप परमात्मा है। अक्षर ब्रह्म का आलम्बन लेकर परमात्मा के आधीन मायाशक्ति ही स्थूल सूक्ष्म नामरूपा द्वैतसृष्टि का निर्माण कर जीवात्माओं के रूप में प्रकट होती है जैसे कि घटों का निर्माण होते ही आकाश में से घटाकाशों का उदय हो जाता है। इस मायिक रहस्य को जानने के लिए माया ने ही चित्त का निर्माण किया। यदि ऐसा न होता तो सर्वत्र एक ही आत्मतत्व विद्यमान रहता और फिर कोई किसी अन्य को कैसे देखता। इसलिए परमात्मा का ज्ञान चित्त के द्वारा ही सम्भव है। इसी चित्त ने आत्मतेज से युक्त प्राण ने प्रवेश किया है और पाँच वायु यानि प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान प्रकट करके मन, बुद्धि, इन्द्रियों तथा शरीरों में शक्ति का संचार किया। प्राण ने ही चित्त में चित्तवृत्तियों का मलावरण तैयार करके आत्मा को जीवात्मा बना दिया और जब योगसमाधियों के अभ्यास से चित्त का मार्जन किया गया तब प्रज्ञा की सातों भूमिकाओं को पार कर विशुद्ध हुए चित्त में परमात्मा का शुद्धस्वरूप स्वतः प्रकट हो जाता है, ऐसा विधान भी बना दिया गया। प्राणात्मा को हंस कहा गया है क्योंकि वह गतिमान रहता है और मायिक बन्धन का हन्ता भी है। तीनों लोकों के मध्य एक ही

हंस है जो अग्नि, वायु तथा जलादि सभी मायिक पदार्थों में सर्वव्याप्त होकर उन्हें कार्यशक्ति प्रदान करता है। जब विशुद्ध चित्त से युक्त योगी प्राणात्मा के परमात्मस्वरूप और ऐश्वर्य को अपने अन्तःकरण में अनुभव करता है तब माया की सभी भ्रान्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और वह मायिक बन्धन से मुक्त हो जाता है। इस महत्वपूर्ण प्रक्रिया को समझाने के लिए वेदशास्त्र में एक रूपक दिया है कि –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया,
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति,
अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नः,
अनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यति अन्यमीशम्,
अस्य महिमानमिति वीतशोकः।।

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णम्,
कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय,
निरंजनः परमं साम्यमुपैति।।

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैः विभाति,
विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड़ः आत्मरतिः क्रियावान्,
एष ब्रह्मविदां वरिष्ठः।।

(मुण्डक उप. 3/1–4)

अर्थात् परमात्मा की अनादि तथा त्रिगुणात्मिका माया एक ऐसे कल्पित अनन्त विस्तार वाले अश्वस्थवृक्ष के समान गीता में वर्णित है जिसकी मूल अविज्ञेय अक्षर ब्रह्म में स्थित है तथा शाखायें ऊपर के दिव्य लोकों तक तथा पृथ्वी आदि निम्न लोकों तक सर्वव्याप्त हैं, कर्म तथा कर्मफलों से सुसज्जित, गुण तथा गुणविकारों से सर्वव्यापी होकर परिपूर्ण है। ऐसे दिव्य तथा विलक्षण वृक्ष पर अनादिकाल से जीव तथा परमात्मा रूपी दो अतिसुन्दर स्वरूप वाले दो पक्षी

मित्रभाव में वास करते हैं, उनमें से जीवपक्षी विषयभोगरूपी फलों के स्वाद में मदोन्मत्त होकर मायिक कर्मबन्धन में फँसा हुआ है तथा ईश्वररूपी द्वितीय पक्षी इस स्वाद से निरासक्त होकर केवल ज्ञानविज्ञान से युक्त होकर केवल साक्षीमात्र रहता है। इस प्रकृतिरूपी वृक्ष का जो पक्षी विषयभोगों में लिप्त है, वह बुद्धिबोधात्मक होने से भ्रान्तिज्ञान से तृषित मायापाश में बद्ध होकर शोकातुर है। जब गुरुप्रदत्त तत्वज्ञान तथा योगसमाधि में परमात्मा के ऐश्वर्य का अनुभव कर जीवपक्षी अपने परममित्र परमात्मपक्षी के स्वरूप को देख लेता है तब सदैव के लिए मायापाश से मुक्त होकर अमृतत्व प्राप्त कर लेता है। जब वह स्वयंप्रकाशी परमात्मा को देखता है जो स्वयं अकेला ही संसार का सृष्टा तथा भर्ता है और यह प्रकृति ही समस्त प्राणियों की महद्योनि है और स्वयं परमात्मा ही इसका बीजप्रदा पिता है। इस तत्वज्ञान के पश्चात् पापपुण्यात्मक कर्मबन्धन से मुक्त होकर विशुद्धचित्त से युक्त ब्रह्मज्ञानी होकर गुणों की परम साम्यावस्था को प्राप्त कर लेता है। जब यह जीवरूप पक्षी अपनी ही प्राणात्मा को समस्त जीवयोनियों में व्याप्त देखता है तब किसी से द्वेष नहीं करता और न मिथ्या देहात्मक अहंकार का प्रदर्शन करता है। इस अनुभूति के पश्चात् परमात्मस्वरूप को पाकर दोनों में एकात्मता हो जाती है और वह अभेदभाव में एक ही आत्मस्वरूप में क्रीड़ा करते हैं, प्रेममग्न रहते हैं और योगस्थ होकर ब्रह्मानन्द का अनुभव करते हैं। यह स्थिति कब और कैसे प्राप्त होती है इस पर शास्त्र का कथन है कि–

सत्येन लभ्यः तपसा ह्येष आत्मा,
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रः,
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥

(मुण्डक उ. 3/5)

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा,
नान्यैः देवैः तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वः,
ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥

(मुण्डक 3/1/8)

नायमात्मा प्रवचेन लभ्यः,
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः,
तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥

(मुण्डक उ. 3/2/3)

अर्थात् यह आत्मज्ञान सत्यरूपी तप से प्राप्त होता है यानि जब चित्त में निर्बाध विवेकख्याति का प्रवाह चलता है और सांसारिक चित्तवृत्तियों का चित्त से नितान्त अभाव हो जाता है तब आत्मा का विशुद्ध ज्योतिस्वरूप चित्त में प्रकाशित हो जाता है तथा चित्त का मलावरण नष्ट हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप सभी मायिक दोषों के क्षीण हो जाने से योगी अपने चित्त में ही परमात्मदर्शन कर लेते हैं। इसका कारण है कि –

''तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्।।''

(योगदर्शन)

अर्थात् मायिक चित्तवृत्तियों के अभाव में क्षेत्रज्ञ द्रष्टा अपने सत्य आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है। यह आत्मस्वरूप मायातीत होने से न चक्षु से ग्रहण किया जा सकता है, न वाणी से वर्णित हो सकता है, न अन्य इन्द्रियों का विषय है और न किसी भी प्रकार के तप तथा अन्य कर्मों से ग्रहण नहीं हो सकता, क्योंकि यह साधन प्रकृति के कार्य हैं और आत्मा प्रकृति से परे है। आत्मा को ग्रहण करने का एक ही उपाय है और वह है योगाभ्यास के द्वारा अन्तःकरण विशुद्ध होने पर ज्ञानचक्षु द्वारा ही ग्रहण होता है। यही आध्यात्मिक सत्य है कि आत्मा वाणी का विषय नहीं है और न बुद्धि का। जब इस आत्मतत्व को जानने की जिज्ञासा चित्त में जागृत होती है और तभी आत्मा स्वयं उसका वरण करती है और उसी के कृपाप्रसाद से उसका अन्तःकरण ज्ञानज्योति से प्रकाशित होता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। इसी को जीवात्मा तथा परमात्मा की एकात्मता कहा जाता है। मायिक बन्धन तभी तक अपना कार्य करता है जब तक जीवात्मा अपने को परमात्मा से भिन्न अनुभव करती है और सुख दुःख की भोक्ता तथा अल्पज्ञ एवं विवश अनुभव करती है। वेदशास्त्र इस सत्य की पुष्टि करते हैं कि –

पश्यति आत्मानमन्यच्च यावत्वै परमात्मनः।
तावत् सम्भ्राम्यते जन्तुः मोहितो निजकर्मणा।।

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते,
अस्मिन्हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
प्रथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा,
जुष्टः ततस्तेन अमृतत्वमेति।।

(श्वेता. उप. 1/6)

संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावात् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

(श्वेता.उप. 1/8)

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वम्,
दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैः विशुद्धम्,
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

(श्वेता. उप. 2/15)

अर्थात् जब तक अविद्या के अन्धकार में जीव अपने को परमात्मा से पृथक भिन्न समझते हुए व्यवहार करता है तब तक अपने आत्मस्वरूप का सत्यज्ञान न होने से संसार में भटकता रहेगा और अपने कर्मों का फल भोगता रहेगा। जब तक जीव अपने को तथा सर्वनियन्ता परमात्मा को अलग–अलग मानकर इस समस्त भूतों के जीवननिर्वाहक तथा समस्त द्वैतसृष्टि का आश्रय स्थान इस महान ब्रह्मचक्र में भ्रमता रहता है। जब योग द्वारा उससे अभिन्न रूप से सेवित होता है तब अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है। माया की इस सृष्टि में जो नाशवान तथा नामरूप वाले पदार्थ हैं वह अक्षर तथा अव्यक्त आत्मतत्व से इस प्रकार संयुक्त हो गये हैं कि दोनों के गुण एकीभूय में होकर प्रकाशित होते हैं और उन पर विश्व आच्छादित है और ईश्वर के शासन में पूर्ण नियन्त्रित है। इसमें जीवसृष्टि मायिक गुणों से उत्पन्न विषयभोगों की भावना के कारण मायाबद्ध है और उसमें से जो ईश्वर के स्वरूप को जान जाते हैं, वह मायापाश से मुक्त हो जाते हैं। यह तभी सम्भव होता है जो दीप के समान स्वयंप्रकाशी परमात्मा उनके विशुद्ध अन्तःकरण में अपने विज्ञानमय तथा ज्योतिस्वरूप में प्रकाशित हो जाता है। तभी ज्ञानज्योति से आत्मा का निर्गुण, अजन्मा, सर्वव्यापी, निश्चल तथा मायिक तत्वों से मुक्त विशुद्ध स्वरूप प्रकट हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मुख से इस स्थिति का संकेत दिया है कि –

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।
सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि सः योगी मयि वर्तते।।
यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्ति आत्मनि अवस्थितम्।
यतन्तोऽपि अकृतात्मानो नैनं पश्यन्ति अचेतसः।।
मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय च कल्पते।।
बुद्धया विशुद्धया युक्तः धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन् विषयान् त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।।

विविक्तसेवी लघ्वाशी: यतवाक्कायमानस:।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रित:।।
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममो शान्तो ब्रह्मभूयाय च कल्पते।।

अर्थात् विशुद्धचित्त वाला सिद्धयोगी समस्त प्राणियों में अपनी ही आत्मा को देखता है और सर्वप्राणियों की प्राणात्मा को अपनी आत्मा में ही अनुभव करता है। ऐसा विशुद्धचित्त वाला योगी अपने को समस्त विश्व में व्याप्त परमात्मा के साथ एकात्मता का अनुभव करते हुए जीवनमुक्त होकर विचरण करता है। इस प्रकार प्रयासरत सिद्धयोगी ही अपने चित्त में परमात्मा का दर्शन करते हैं, किन्तु जो पूर्णरूपेण विशुद्धचित्त नहीं है, वह प्रयासरत होते हुए परमात्मदर्शन के अधिकारी नहीं होते। माया का मलावरण गुणात्मक होता है, अत: जो साधक योगी अनन्याभक्ति के द्वारा परमात्मा का स्मरण करते हैं, वही साधक परमात्मकृपा से गुणातीत होकर परमात्मदर्शन के अधिकारी बनते हैं। व्यवहार में ऐसे योगियों की पहचान है कि उनकी बुद्धि रजोगुण तथा तमोगुण से मुक्त होकर शुद्ध सात्विकी होती है, धैर्ययुक्त होकर चित्तवृत्तियों पर उनका पूर्ण नियन्त्रण होता है, शब्दादि इन्द्रियभोगों की वासना से मुक्त होते हैं, एकान्तप्रिय तथा लघ्वाशी होते हैं और वैराग्यसम्पन्न होकर नित्य निरन्तर योगसमाधि में लीन रहते हैं तथा अहंकार, शक्तिप्रदर्शन, कामक्रोधादि के मायिक विकारों से सर्वथा मुक्त होकर निर्मल तथा परम शान्तचित्त वाले योगी ही परमात्मदर्शन के पूर्ण अधिकारी होते हैं और सदैव विशुद्ध सतोगुण में रमण करने वाले आनन्दस्वरूप तथा ज्ञानस्वरूप हो जाते हैं। ऐसे विशुद्धचित्त वाले योगियों का वेद में इस प्रकार वर्णन किया गया है कि–

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तमो याति परां गति:।।

अर्थात् जब रजोगुण तथा तमोगुण के शान्त होने पर जब चित्त की शुद्ध सतोगुणी स्थिति रहती है तथा उसमें मन के सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ निष्क्रिय होकर परम शान्त हो जाती हैं और बुद्धि में कोई चेष्टा नहीं होती तब योगी निर्बीज समाधि में प्रवेश कर जाता है और तभी वह परमात्मदर्शन करता है।

दैनिक जीवन में तुलसी का उपयोग और

आरोग्य-विधान

साभार - कल्याण

तुलसी एक बहुश्रुत, उपयोगी वनस्पति है। भारतीय धर्म–संस्कृति में तुलसी अति पवित्र और महत्वपूर्ण है। प्रत्येक हिन्दू के घर–आँगन में तुलसी–क्यारे का होना घर की शोभा, घर के संस्कार, पवित्रता तथा धार्मिकता का अनिवार्य प्रतीक है। मात्र भारत में ही नहीं, वरन् विश्व के कई अन्य देशों में भी तुलसी को पूजनीय तथा शुभ माना गया है। ग्रीस में इस्टर्न चर्च नामक सम्प्रदाय में भी तुलसी की पूजा होती थी और सेंट बेजिल–जयन्ती के दिन 'नूतन वर्ष भाग्यशाली हो' – इस भावना से देवल में चढ़ायी गयी तुलसी के प्रसाद को स्त्रियाँ घर में ले जाती थी। समस्त वृक्षों–वनस्पतियों में सर्वाधिक धार्मिक, आध्यात्मिक, आरोग्यलक्ष्मी एवं शोभा की दृष्टि से तुलसी को मानव–जीवन में महत्वपूर्ण, पवित्र तथा श्रद्धेय स्थान मिला है। यह भगवान् नारायण को अति प्रिय है। वृन्दा, विष्णुप्रिया, माधवी आदि भी इसके नाम हैं। धार्मिक आध्यात्मिक महत्ता तो इसकी है ही, आरोग्य प्रदान करने में भी इसका विशेष स्थान है। इसीलिए यह 'आरोग्यलक्ष्मी' भी कहलाती है।

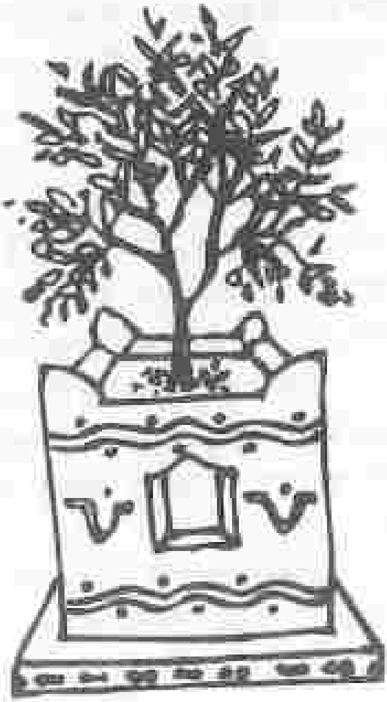

प्रदूषित वायु के शुद्धिकरण में तुलसी का विलक्षण योगदान है। यदि तुलसीवन के साथ प्राकृतिक चिकित्सा की कुछ पद्धतियाँ जोड़ दी जायें तो प्राणघातक और दु:साध्य रोगों को भी निर्मूल करने में सफलता मिल सकती है।

तुलसी शारीरिक व्याधियों को तो दूर करती ही है, साथ ही मनुष्य के आन्तरिक भावों और विचारों पर भी कल्याणकारी प्रभाव डालती है। तुलसी के पौधे में मच्छरों को दूर भगाने का गुण है और इसकी पत्तियाँ खाने से मलेरिया के दूषित तत्वों का मूलत: नाश होता है। तुलसी और काली मिर्च का काढ़ा बनाकर पीने के सरल प्रयोग से ज्वर दूर किया जा सकता है।

निसर्गोपचारकों का कहना है कि तुलसी की पत्तियों को दही या छाछ के साथ सेवन करने से वजन कम होता है, शरीर की चरबी कम होती है, अत: शरीर

सुडौल बनता है। साथ ही थकान मिटती है। दिनभर स्फूर्ति बनी रहती है और रक्तकणों में वृद्धि होती है।

ब्लडप्रेशर के नियमन, पाचनतन्त्र के नियमन तथा रक्तकणों की वृद्धि के अतिरिक्त मानसिक रोगों में भी तुलसी के प्रयोग से असाधारण सफल परिणाम प्राप्त हुए हैं।

अथर्ववेद में आता है, यदि त्वचा, माँस तथा अस्थि में महारोग प्रविष्ट हो गया हो तो उसे श्याम तुलसी नष्ट कर देती है। तुलसी के दो भेद होते हैं – 1. हरे पत्तेवाली और 2. श्याम (काले) पत्तेवाली। श्यामा तुलसी सौन्दर्यवर्धक है। इसके सेवन से त्वचा के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं और त्वचा पुन: मूल स्वरूप धारण कर लेती है। तुलसी त्वचा के लिए अद्‌भुत रूप से गुणकारी है।

तुलसी हिचकी, खाँसी, विषदोष, श्वाँस और पार्श्वशूल को तथा वात, कफ और मुँह की दुर्गन्ध को नष्ट करती है।

स्कन्दपुराण एवं पद्मपुराण के उत्तराखण्ड में आता है कि जिस घर में तुलसी का पौधा होता है, वह घर तीर्थ के समान है। वहाँ व्याधिरूपी यमदूत प्रवेश ही नहीं कर सकते।

तुलसी किडनी की कार्यशक्ति में वृद्धि करती है। तुलसी के रस में शहद मिलाकर देने से एक केस में किडनी की पथरी छ: माह के निरन्तर उपचार से बाहर निकल गयी थी।

इण्ट्राटेकिप्पल कैंसर से पीड़ित एक रोगी पर ऑपरेशन तथा अन्य अनेक उपचार करने के बाद अन्त में आशा छोड़कर डॉक्टरों ने घोषित किया कि रोगी का यकृत् खराब हो रहा है। यक्ष्मा में भी वृद्धि हो रही है। अब यह रोग लाइलाज है। उसी समय एक वैद्य ने उक्त विधान के विरुद्ध चुनौती दी। रोगी को पाँच सप्ताह तक केवल तुलसी का सेवन कराया, फलस्वरूप वह इतना स्वस्थ हो गया कि एक मील तक पैदल चल सकता था।

हृदय रोग से पीड़ित कई रोगियों के हाई ब्लडप्रेशर तुलसी के उपचार से सामान्य हुए हैं। हृदय की दुर्बलता कम हो गयी है और रक्त में चर्बी की वृद्धि रुकी है। जिन्हें ऊँचाई वाले स्थानों पर जाने की मनाही थी, ऐसे अनेक रोगी तुलसी के नियमित सेवन के बाद आनन्दपूर्वक ऊँचाई वाले स्थानों पर जाने में समर्थ हुए हैं।

एक लड़का बचपन से ही मन्द बुद्धि का था। सोलह वर्षों तक उसके अनेक उपचार हुए, किन्तु उसकी बौद्धिक मन्दता दूर नहीं हुई। तुलसी के नियमित सेवन से दो ही महीनों के भीतर उसमें बुद्धिमत्ता के लक्षण दिखायी पड़े, समय बीतने पर वह कुछ और अधिक बुद्धिशाली हो गया।

बच्चों को तुलसी पत्र देने के साथ सूर्य–नमस्कार करवाने और सूर्य को अर्घ्य दिलवाने के प्रयोग से बुद्धि में विलक्षणता आती है।

सफेद दाग और कुष्ठ के अनेक रोगियों को तुलसी के उपचार से अद्‌भुत लाभ हुआ है।

प्रतिदिन प्रातःकाल खाली पेट पानी के साथ तुलसी की पाँच–सात पत्तियों का सेवन करने से बल, तेज और स्मरणशक्ति बढ़ती है। तुलसी के काढ़े में थोड़ी शक्कर मिलाकर पीने से स्फूर्ति आती है और थकावट दूर हो जाती है। जठराग्नि प्रदीप्त रहती है। इसके रस में नमक मिलाकर उसकी बूँदें नाक में डालने से मूर्च्छा दूर होती है, हिचकियाँ भी शान्त हो जाती है।

तुलसी ब्लड–कॉलेस्ट्रॉल को बहुत तेजी के साथ सामान्य बना देती है। तुलसी के नित्य सेवन से एसिडिटी दूर होती है। पेचिश, कोलाइटिस आदि मिट जाते हैं।

स्नायु का दर्द, जुकाम, सर्दी, मेदवृद्धि, सिरदर्द आदि में तुलसी गुणकारी है। इसका रस, अदरक का रस एवं शहद समभाग में मिश्रित करके बच्चों को चटाने से उनके कुछ रोगों – विशेषकर सर्दी, दस्त, उल्टी और कफ में लाभ होता है। हृदयरोग और उसकी आनुषंगिक निर्बलता तथा बीमारी में तुलसी के उपयोग से आश्चर्यजनक सुधार होता है।

वजन बढ़ाना या घटाना हो तो तुलसी का सेवन करें, इससे शरीर स्वस्थ और सुडौल बनता है। मन्दाग्नि, कब्जियत, गैस आदि रोगों के लिए तुलसी रामबाण औषधि सिद्ध हुई है।

तुलसी की क्यारी के पास प्राणायाम करने से सौन्दर्य, स्वास्थ्य और तेज की अतुलतम वृद्धि होती है।

तुलसी की सूखी पत्तियों को पीसकर उसके चूर्ण को पाउडर की तरह चेहरे पर रगड़ने से चेहरे की कान्ति बढ़ती है और चेहरा सुन्दर दिखता है।

मुँहासों के लिए भी तुलसी अत्यन्त उपयोगी है। ताँबे के बरतन में नीबू के रस को चौबीस घण्टे तक रख छोड़िये। फिर उसमें इतनी ही मात्रा में काली तुलसी का रस तथा काली कसौंदी (कसौंजी) – का रस मिलाइये। इस मिश्रण को धूप में सुखाकर गाढ़ा कीजिये। इस लेप को चेहरे पर लगाने से धीरे–धीरे चेहरा स्वच्छ, चमकदार, सुन्दर, तेजस्वी बनेगा तथा कान्ति बढ़ेगी।

काली मिर्च, तुलसी और गुड़ का काढ़ा बनाकर उसमें नीबू का रस मिलाकर दिन में दो–दो या तीन–तीन घण्टे के अन्तर से गर्म–गर्म पियें। फिर कम्बल ओढ़कर सो जायें। यह काढ़ा मलेरिया को दूर करता है।

श्लेष्मक ज्वर (इन्फ्लूएन्जा) – के रोगी को तुलसी का बीस ग्राम रस, अदरक का चालीस ग्राम रस तथा शहद मिलाकर दें।

तुलसी की जड़ कमर में बाँधने से गर्भवती स्त्रियों को लाभ होता है। प्रसव–वेदना कम होती है और प्रसूति भी सरलता से हो जाती है।

तुलसी की पत्तियों का रस बीस ग्राम चावल के माँड़ के साथ सेवन करने से तथा दूध–भात या घी–भात का पथ्य लेने से प्रदररोग दूर होता है।

तुलसी की पत्तियों को नीबू के रस में पीसकर लगाने से दाद–खाज मिट जाती है।

तुलसी का पाउडर तथा सूखे आँवलों का पाउडर पानी में भिगोकर रख दीजिए, प्रातःकाल छानकर उस पानी से सिर धोने से सफेद बाल काले हो जाते है, तथा बालों का झड़ना रुक जाता है।

तुलसी और अदरक का रस शहद के साथ लेने से उल्टी में लाभ होता है।

पेट में दर्द होने पर तुलसी की ताजी पत्तियों का दस ग्राम रस पिये।

इस तरह आरोग्य-दान करने में तुलसी बहुत ही महत्वपूर्ण है। हमें चाहिए कि जगह-जगह तुलसी के पौधे लगाकर तथा तुलसी के बीज डालकर तुलसी का वृन्दावन बनायें, वातावरण को शुद्ध, पवित्र कर स्वस्थ करें तथा स्वस्थ रहें।

भवरोग से मुक्ति का उपाय

1. आत्म-निरीक्षण करना अर्थात् प्राप्त विवेक के प्रकाश में अपने दोषों को देखना।
2. की हुई भूल को पुनः न दोहराने का व्रत लेकर सरल विश्वासपूर्वक भगवान् से प्रार्थना करना।
3. विचार का प्रयोग अपने पर और विश्वास का दूसरों पर करना अर्थात् न्याय अपने पर और प्रेम तथा क्षमा अन्य पर करना।
4. जितेन्द्रियता, सेवा भगवच्चिन्तन और सत्य की खोज द्वारा अपना निर्माण।
5. दूसरों के कर्तव्य को अपना अधिकार, दूसरों की उदारता को अपना गुण और दूसरों की निर्बलता को अपना बल न मानना।
6. पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्ध न होते हुए भी पारिवारिक भावना के अनुरूप ही पारस्परिक सम्बोधन तथा सद्भाव अर्थात् कर्म की भिन्नता होने पर भी स्नेह की एकता बनाये रखना।
7. निकटवर्ती जन-समाज की यथाशक्ति क्रियात्मक रूप से सेवा करना।
8. शारीरिक हित की दृष्टि से आहार-विहार में संयम तथा दैनिक कार्यों में स्वावलम्बन रखना।
9. शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय अनुरागी तथा अहंको अभिमान-शून्य करके अपने को सुन्दर बनाना।
10. सिक्के से वस्तु, वस्तु से व्यक्ति, व्यक्ति से विवेक तथा विवेक से सत्य को अधिक महत्व देना।
11. व्यर्थ चिन्तन के त्याग तथा वर्तमान के सदुपयोग द्वारा भविष्य को उज्जवल बनाना।

जीवन गठन की साधनाएँ

(कैलीफोर्निया में सन् 1900 में दिया गया स्वामी विवेकानन्द जी का भाषण)

योग शास्त्र यह दावा करता है कि उसने उन नियमों को ढूंढ निकाला है, जिनके द्वारा इस व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है। इन नियमों तथा उपायों की ओर ठीक–ठीक ध्यान देने से मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और उसे शक्तिशाली बना सकता है। बड़ी–बड़ी व्यावहारिक बातों में यह एक महत्व की बात है और समस्त शिक्षा का यही रहस्य है। इसकी उपयोगिता सार्वदेशीय है। चाहे वह गृहस्थ हो, चाहे गरीब, अमीर, व्यापारी या धार्मिक– सभी के जीवन में व्यक्तित्व को शक्तिशाली बनाना ही एक महत्व की बात है। ऐसे अनेक सूक्ष्म नियम हैं, जो, हम जानते हैं, इन भौतिक नियमों से अतीत हैं। मतलब यह कि भौतिक जगत्, मानसिक जगत् या आध्यात्मिक जगत् – इस तरह की कोई नितान्त स्वतन्त्र सत्ताएँ नहीं हैं। जो कुछ है, सब एक तत्व है। या हम यों कहेंगे कि यह सब एक ऐसी वस्तु है, जो यहाँ पर मोटी है और जैसे–जैसे वह ऊँची चढ़ती है, वैसे–ही–वैसे वह सूक्ष्मतर होती जाती है, सूक्ष्मतम को हम आत्मा कहते हैं और स्थूलतम को शरीर और जो कुछ छोटे प्रमाण में इस शरीर में है, व[illegible] बड़े प्रमाण में विश्व में है। जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है। यह हमारा विश्व ठीक इसी प्रकार [illegible] है। बहिरंग में स्थूल घनत्व है और जैसे–जैसे यह ऊँचा चढ़ता है, वैसे–वैसे वह सूक्ष्मतर होता जाता है और अन्त में परमेश्वर, रूप बन जाता है।

हम यह भी जानते हैं कि सब से अधिक शक्ति सूक्ष्म में है, स्थूल में नहीं। एक मनुष्य भारी वजन उठाता है। उसके स्नायु फूल उठते हैं और सम्पूर्ण शरीर पर परिश्रम के चिन्ह दिखने लगते हैं। हम समझते हैं कि स्नायु बहुत शक्तिशाली वस्तु है। परंतु असल में जो स्नायुओं को शक्ति देते हैं, वे तो धागे के समान पतले ज्ञान–तन्तु हैं। जिस क्षण इन तन्तुओं में से एक का भी स्नायुओं से सम्बन्ध टूट जाता है, उसी क्षण वे स्नायु बेकाम हो जाते हैं। ये छोटे–छोटे ज्ञान–तन्तु किसी अन्य सूक्ष्मतर वस्तु से अपनी शक्ति ग्रहण करते हैं, और वह सूक्ष्मतर वस्तु फिर अपने से भी अधिक सूक्ष्म विचारों से शक्ति ग्रहण करती है। इसी तरह यह क्रम चलता रहता है। इसलिए वह सूक्ष्म तत्व ही है, जो शक्ति का अधिष्ठान है। स्थूल में होने वाली हलचल हम अवश्य देख सकते हैं, परंतु सूक्ष्म में होने वाली हलचल हम देख नहीं सकते। जब स्थूल वस्तुएँ हलचल करती हैं, तो हमें उसका बोध होता है और इसलिए हम स्वाभाविक ही हलचल का सम्बन्ध स्थूल से जोड़ देते हैं; परन्तु वास्तव में सारी शक्ति सूक्ष्म में ही है। सूक्ष्म में होने वाली हलचल हम देख नहीं सकते। शायद इसका कारण यह है कि वह हलचल इतनी तीव्र होती है कि हम

उसका अनुभव ही नहीं कर सकते। परंतु यदि कोई शास्त्र या कोई शोध इन सूक्ष्म शक्तियों के ग्रहण करने में सहायता दे, तो यह व्यक्त विश्व ही, जो इन शक्तियों का परिणाम है, हमारे अधीन हो जायेगा। पानी का एक बुलबुला झील के तल से निकलता है, वह ऊपर आता है, परंतु हम उसे देख नहीं सकते, जब तक कि वह सतह पर आकर फूट नहीं जाता। इसी तरह विचार अधिक विकसित हो जाने पर या कार्य में परिणत हो जाने पर ही देखे जा सकते हैं। हम सदा यही कहा करते हैं कि हमारे कर्मों पर, हमारे विचारों पर हमारा अधिकार नहीं चलता। यह अधिकार हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं? हम विचारों को मूल में ही अगर अधीन कर सकें, तो इन सूक्ष्म हलचलों पर हमारी हुकूमत चल सकेगी। विचारों को कार्य में परिणत होने के पहले ही जब हम अधीन कर लेंगे, तभी सब पर हमारी हुकूमत चल सकेगी।

अब अगर ऐसा कोई उपाय हो, जिसके द्वारा हम कारणभावों का अर्थात् इन सूक्ष्म शक्तियों का पृथक्करण कर सकें, उन्हें समझ सकें और अन्त में अपने अधीन कर सकें, तो हम खुद पर अपना अधिकार चला सकेंगे। और जिस मनुष्य का मन उसके अधीन होगा, निश्चय ही वह दूसरों के मनों को भी अपने अधीन कर सकेगा। यही कारण है कि पवित्रता तथा नीतिमत्ता सदा के लिए धर्म के विषय बने हुए हैं। पवित्र, सदाचारी मनुष्य स्वयं पर अपना अधिकार चलाता है। हम सब के मन उस एक ही समष्टि मन के अंश मात्र हैं। जिसे एक ढेले का ज्ञान हो गया, उसने दुनिया की सारी मिट्टी जान ली। जो अपने मन को जानता है और स्व–अधीन रख सकता है, वह दूसरों के मनों का रहस्य भी पहचानता है और उन पर अपनी हुकूमत चला सकता है।

हम अपने भौतिक दुःखों का अधिकांश दूर कर सकते हैं, अगर हम इन सूक्ष्म कारणों पर अपना अधिकार चला सकें। हम अपनी चिन्ताओं को दूर कर सकते हैं, अगर यह सूक्ष्म हलचल हमारे अधीन हो जाय। अनेक अपयश टाले जा सकते हैं, अगर हम इन सूक्ष्म शक्तियों को अपने अधीन कर लें। यहाँ तक तो उपयोगिता के बारे में हुआ, लेकिन इसके परे और भी कुछ उच्चतर साध्य है।

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवाः।
न च विद्याऽऽगमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत्॥

जिस देश में न तो आदर–सम्मान है, न आजीविका–प्राप्ति के साधन हैं, न बन्धु–बान्धव हैं और न ही किसी विद्या की प्राप्ति की सम्भावना है, ऐसे देश को छोड़ देना चाहिए, ऐसे स्थान पर नहीं रहना चाहिए।

देवत्व प्राप्ति का साधन

श्री रघुनन्दन सिंह शास्त्री, मैनपुरी

न द्विषन्ति न याचन्ते, परनिन्दां न कुर्वते।
अनाहूता न चायान्ति, तेनाश्मानोऽपिदेवता।।

अर्थ – न किसी से द्वेष करते है, न किसी से कुछ माँगते है, पर निन्दा नहीं करते है, बिना बुलाये नही आते है, इसी से पत्थर भी देवता है।

इन गुणों के कारण जब पत्थर भी देवता है तो यदि हम इनको धारण कर सके तब जड़ देवता की अपेक्षा चेतन देव महान नहीं होगा क्या? अवश्य ही होगा और वह प्रत्यक्ष देवत्व कम से कम हम गुरु बन्धुओं को तो गुरुदेव में और अनेकों विशेषताओं के साथ सुलभ एवं अनुभव गम्य है ही।

पानी–पानी कहने से प्यास और रोटी–रोटी कहने से भूख नहीं शान्त हो सकती। ऐसे ही खाली राम–राम कहने से मोक्ष प्राप्ति कठिन ही है। जब तक 'तज्जपस्तदर्थ भावनम् (यो. 1/28) के अनुसार प्रभु की उपासना अर्थात् प्रभु के गुणों का समावेश अपने व्यवहार में, अपने स्वभाव में हम नहीं ले आयेंगे, तब तक शान्ति–लाभ अर्थात् मोक्ष कठिन ही है। (मो+क्ष) मोक्ष का अर्थ है मोह का क्षय हो जाना और इसी का पर्याय वाचक शब्द है मोहन (मोह+न=मोह जिनको नहीं रहा) ऐसी स्थिति होती है कब? जब हमें अपने 'स्वरूप' का ज्ञान हो जाता है (स्व=आत्म रूप शरीर से भिन्न है) इसका ज्ञान करने के लिए आवश्यक है स्वाध्याय। स्वाध्याय को समझना हमारे लिये परम आवश्यक है। यह शब्द हमें कहां से मिला और इसका सही अर्थ क्या है यह देखना है।

''तप स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोग:'' (यो. 2/1)

महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में 'क्रिया योग' के अन्तर्गत इसे रखा है। सूत्रार्थ: तो योग दर्शन के पहले अध्याय में जिन सब समाधियों की बात कही गई है, उन्हें प्राप्त करना सर्वसामान्य के लिए अत्यन्त कठिन है। इसलिए हमें धीरे–धीरे विभिन्न सोपानों में से होते हुए उन सब समाधियों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना होगा। इसके पहले सोपान को क्रियायोग कहते है। इस शब्द का अर्थ है कर्म के सहारे योग की ओर बढ़ना। हमारी देह मानो एक रथ है, इन्द्रियां घोड़े है, मन लगाम है। बुद्धि सारथी है और आत्मा रथी है। यह गृहस्वामी, यह राजा यह मनुष्य की आत्मा रथ में सवार है। यदि घोड़े बड़े तेज हों और लगाम खिंची न रहे, यदि बुद्धि रूपी सारथी उन घोड़ों को संयत करना न जाने तो रथ की दुर्दशा हो जायेगी। पर यदि इन्द्रिय रूपी घोड़े अच्छी तरह से संयत रहे और मन रूपी लगाम बुद्धि रूपी सारथी के हाथों अच्छी तरह कसी रहे, तो वह रथ ठीक अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाता है। इस तरह यह समझ में आ

जायेगा कि तपस्या शब्द का अर्थ क्या है तपस्या शब्द का अर्थ है इस शरीर और इन्द्रिय को चलाते समय लगाम अच्छी तरह थामे रहना, उन्हें अपनी इच्छानुसार काम न करने देकर अपने वश में किये रहना। अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म का पालन करना और उसके पालन में जो शारीरिक या मानसिक कष्ट आवे, उन्हें सहर्ष सहन करना यह मानकर कि मेरे प्रभु की परम कृपा है जो यह योग अभी भुगते जा रहे हैं। इसका नाम है। 'तप'। निष्काम भाव से इस तप का पालन करने से हमारा अन्तःकरण अनायास ही शुद्ध हो जाता है। यह गीता में वर्णित कर्मयोग का ही अंग है। इसके अनन्तर आता है स्वाध्याय-स्वाध्याय का सामान्यतः अर्थ किया जाता है पठन-पाठन। यहां पठन का तात्पर्य क्या है? नाटक उपन्यास कहानी या धनोपार्जन सिखाने वाली पुस्तकों का पाठ नहीं वरन उन सद्ग्रन्थों का पठन जो यह शिक्षा देते हैं कि आत्मा की मुक्ति कैसे होती है। फिर स्वाध्याय से तर्क या विचारात्मक पुस्तक का पाठ नहीं समझना चाहिए। जो योगी हैं, वे तो विचार आदि करके तृप्त हो चुके रहते हैं विचार में उनकी कोई रुचि नहीं रह जाती। वे पठन-पाठन करते हैं केवल अपनी धारणाओं को दृढ़ करने के लिये। शास्त्रीय ज्ञान दो प्रकार का है। एक है वाद (जो तर्क युक्त और विचारात्मक है) और दूसरा है सिद्धान्त (मीमांसात्मक) अज्ञानावस्था में मनुष्य प्रथमोक्त प्रकार के शास्त्रीय ज्ञान के अनुशीलन में प्रवृत्त होता है। यह तर्क युद्ध के समान है प्रत्येक वस्तु के सब पहलू देखकर विचार करना, इस विचार का अन्त होने पर वह किसी एक मीमांसा या सिद्धान्त पर पहुँचता है। किन्तु केवल सिद्धान्त पर पहुँचने से चरम लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाता। इस सिद्धान्त के बारे में मन की धारणा को दृढ़ करना होगा। शास्त्र तो अनन्त है और समय अल्प है, अतः ज्ञान प्राप्ति का रहस्य है सब वस्तुओं का सार भाग ग्रहण करना। उस सार भाग को ग्रहण करो और उसे अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करो। भारतवर्ष में एक पुरानी किम्बदन्ती है कि यदि तुम किसी राजहंस के सामने एक कटोरा भर पानी मिला हुआ दूध रख दो तो वह दूध-दूध पी लेगा और पानी छोड़ देगा। उसी प्रकार ज्ञान का जो अंश आवश्यक है, उसे लेकर असार भाग को हमें फेंक देना चाहिए।

पहले पहले बुद्धि की कसरत आवश्यक होती है। अन्धे के समान कुछ भी ले लेने से नहीं बनता। पर जो योगी हैं, वे इस तर्क-युक्ति की अवस्था को पार कर एक ऐसे सिद्धान्त पर पहुँच चुके हैं जो पर्वत के समान अचल-अटल है। इसके बाद उनका सारा प्रयत्न उस सिद्धान्त को दृढ़ करने में होता है। वे कहते हैं तर्क मत करो, यदि कोई तुम्हें तर्क करने को बाध्य करे तो चुप रहो। किसी तर्क का जवाब न देकर शान्त भाव से वहाँ से चले जाओ क्योंकि तर्क द्वारा मन केवल चंचल ही होता है। तर्क की आवश्यकता थी केवल बुद्धि को तेज करने के लिए जब वह सम्पन्न हो चुका तब उसे और बेकार चंचल करने की क्या जरूरत? बुद्धि तो एक दुर्बल यन्त्र मात्र है यह हमें केवल इन्द्रियों के घेरे में रहने वाला ज्ञान दे सकता है। पर योगी का उद्देश्य है इन्द्रियातीत प्रदेश में चले जाना अतएव उनके लिए बुद्धि चलाने की कोई आवश्यकता नहीं रह

जाती। उन्हें इस विषय में पक्का विश्वास हो चुका है, अतएव वे और अधिक तर्क नहीं करके चुप रहते हैं, क्योंकि तर्क करने से मन समता से च्युत हो जाता है। चित्त में एक हलचल मच जाती है। और चित्त की ऐसी हलचल उनके लिए एक विघ्न ही है। यह सब तर्क युक्ति या विचार पूर्वक तत्व का अन्वेषण प्रारम्भिक अवस्था के लिए है। इस तर्क युक्ति के अतीत और भी उच्चतर तत्व समूह हैं। सारे जीवन भर केवल विद्यालय के बच्चों के समान विवाद या विचार सीमित लेकर ही रहना पर्याप्त नहीं है। ईश्वर में कर्मफल अर्पण करने का तात्पर्य है कर्म के लिए स्वयं कोई प्रशंसा या निन्दा न लेकर इन दोनों को ही ईश्वर को समर्पण कर देना और शान्ति से रहना।

स्वाध्याय का अर्थ एक और भी है कि –

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत, नर श्चरितमात्मनः।
किंनु मे पशुभिस्तुल्यं, किं नु मे सत्पुरुषैरिति।।

प्रतिदिन मनुष्य अपने चरित्र को देखे कि मेरे चरित्र में पशुओं के समान क्या है और सत्पुरुषों के समान क्या है?

वास्तव में स्वाध्याय का यह अर्थ भी महत्वपूर्ण है –

स्व अध्ययन अपना अध्ययन। संसार की सारी भौतिक विद्यायें पढ़ लीं, सारा सांसारिक वैभव पा लिया तो भी क्या लाभ, यदि (स्वरूप स्थिति) आत्म रूप का ज्ञान नहीं हो सका। 'सोऽहम्' मैं वही सर्व शक्तिमान् ब्रह्म हूँ, यह कहना भर पर्याप्त नहीं है जब तक कि उस पर ब्रह्म के गुणों का पूर्णतः न सही, किंचिन्मात्र ही सही अपने व्यवहार में, समावेश हम नहीं करते हैं। राजा के दरबार में जाकर हम कहें कि हम राजा हैं तो निश्चित ही हम दण्ड के भागी होंगे क्योंकि हमारे स्वयं को राजा कहने से हमारा उपहास ही होगा और हमारा स्वयं इस तरह करना पागलपन ही सा है। पर यदि हमारा परिकर और जगत् हमें राजा कहेगा तो निश्चय ही हमारे साथ राजा जैसा व्यवहार जगत् करेगा। हमारा परिकर हमें राजा तभी न कहेगा जब हमारा व्यवहार राजा जैसा होगा। 'राजा प्रकृति रञ्जनात्' प्रजा को प्रसन्न करने से राजा कहा जाता है। जिसने अपने परिवार को, पड़ोस को, समाज को, गाँव को, देश को अपने व्यवहार से प्रसन्न किया है वह आज भी राजा ही है। तो इसी तरह जिसका आचरण ब्रह्मवत् है वह ही ब्रह्म है।

विद्युद ब्रह्मेत्याहुर्विदाना द्विद्युद्विद्यत्येनं पाप्मनो।
य एवं वेद विद्युद्ब्रह्मेति विद्युद्धन्येव ब्रह्म।।

– बृहदारण्यक 5/7

पदार्थ – (विद्दानान्) विदीर्ण करने (काट देने) से (ब्रह्म+विद्युत्+इति+आहुः) ब्रह्म को विद्युत् कहते हैं (यः एवं+विद्युत+ब्रह्म+इति+वेद) जो इस प्रकार से ब्रह्म को विद्युत (पाप

विदारक) जानता है विद्युत+एनम+पाप्मन: विधति) विद्युत इस (ज्ञानी) के पापों को काट देता है। (हि+ब्रह्म+विद्युत+एव) क्योंकि ब्रह्म विद्युत ही है।

तो दूसरों के अज्ञान रूप अन्धकार को दूर करने के लिए जो प्रकाश स्वरूप है वह ही ब्रह्म है और वह ही गुरु है और वह गुरु ब्रह्म ही है।

अज्ञान तिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे की ज्ञानरूपी अञ्जन शलाका से जिसने आँखें खोल दी हैं उन गुरुदेव रूप ब्रह्म को नमस्कार है। गुरु ब्रह्म है इस बात को समझने के लिए श्रुति का उद्धरण ऊपर लिखा है। 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' ही अपने गुरु देव सदृश महापुरुषों का जन्म होता है। इस व्रत को ग्रहण करके जो इस ऊंचे लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाता है, उसका तो जीवन ही व्यर्थ है।

'वृथैव तस्य जीवनम्।'

जगत में गुरुदेव का अवतरण क्यों होता है? औरों के निमित्त अपना जीवन दान करने को, जीवों के आकाश भेद क्रन्दन को दूर करने को, विधवा के आँसू पोंछने को, पुत्र वियोग से पीड़ित अबलाओं के मन को शान्ति देने को, सर्वसाधारण को जीवन संग्राम से सक्षम करने को, शास्त्रों के उपदेशों को फैलाकर सबका ऐहिक और पारमार्थिक मंगल करने को और ज्ञानालोक से सबके भीतर जो ब्रह्मसिंह सुप्त है, उसे जगाने को।

गुरु भाइयो !

'आत्मनो मोक्षार्थ जगत्‌हितायचं।'

हम लोगों का जन्म हुआ है। बैठे–बैठे क्या कर रहे हो? उठो, जागो, चौकन्ने होकर औरों को चेताओ। अपने नर–जन्म को सफल करो।

'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य यरान्निबोधत।'

ज्ञान कहीं बाहर से आने वाला नहीं है। भगवान बुद्धदेव को कितने योगियों और सन्यासियों के पास जाने पर भी कहीं शान्ति नहीं मिली, तब 'इहासने शुष्यतु मे शरीरम्' कहकर आत्म ज्ञान लाभ करने को वे स्वयं ही बैठ गये और प्रबुद्ध ही कर उठे।

संसार का सारा ही वैभव सुख आत्मज्ञानरूप सुख के कण मात्र की तुलना में नगण्य है। और वह आत्म–ज्ञान कहीं बाहर खोजने पर नहीं मिल सकता क्योंकि वह बाहर है ही नहीं, उसका अपार भण्डार हमारे अन्दर ही है और उसकी प्राप्ति का साधन है गुरु कृपा। गुरु कृपा प्राप्ति का साधन है – 'सर्वतो भावेन' गुरुदेव भगवन को आत्मसमर्पण।

आत्म समर्पण कर पाये हम तो बस फिर कल्याण हो गया। इसी को 'निष्काम कर्म योग, ज्ञान, योग, भक्ति योग या संन्यास' जो चाहे कह लो।

आत्म समर्पण कर देने कर हमारी सारी लौकिक पारलौकिक, वैदिक और दैविक क्रियाओं के कर्ता हम नहीं रह जाते है और –

यदा नाहं तदा मोक्षो, यदाहं बन्धनं तदा।।

इस श्रुति के अनुसार जब मैं पन का अभिमान गया तो हम मुक्त ही हैं बन्धन तो तभी तक है जब तक अहं भाव शरीर में है।

यह सारा ज्ञान गुरु कृपा से सुलभ है। (स्व) अपने अध्ययन की लौकिक व्यवहारिक विवेचना तो पूर्व ही 'प्रत्यह प्रत्यवेक्षेत' आदि द्वारा लिखी जा चुकी है। अब आध्यात्मिक विवेचना भगवान शंकर के शब्दों में सुनिए–

कोऽहं कथमिदं जातं, को वै कर्तास्य विद्यते।
उपादानं किमस्तीह, विचारः सोऽयमीदृश।।

मैं कौन हूं? यह जगत किस प्रकार उत्पन्न हुआ? इसका कर्त्ता कौन है। तथा इसका उपादान कारण क्या है? वह विचार इस प्रकार होता है।

नाहं भूतगणो देहो, नाहं चाक्षगणस्तथा।
एतद्विलक्षणः कश्चिद् विचारः सोऽयमीदृशः।।

"मैं भूतों (पृथिव्यापोतेजो वायुराकाशः) का संघात रूप देह नहीं हूं और न इन्द्रिय समूह ही हूं, बल्कि इससे भिन्न ही कोई हूं, वह विचार इस प्रकार होता है।

इस प्रकार का विचार करने के लिए हम गुरुबन्धु प्रतिदिन आरती में गुरुदेव भगवान से प्रार्थना करते हैं कि 'बहिर्मुखी प्रवाह को प्रभुजी अन्तर से देउ जोड़'। जब तक हम अपने वास्तविक स्वरूप जो यह देह नहीं है इससे भिन्न है, की जिज्ञासा, तत्परता पूर्वक प्रबुद्ध नहीं करेंगे तो भाई खाली राम कहने या 'सोऽहं' जाप उसके अर्थ की भावना किये बिना, जैसा कल्याणकारी है तदनुरूप फल की प्राप्ति नहीं होगी।

स्वाध्याय स्वअध्ययन हम करें देखें कि हमारे में देवत्व के वह गुण है, जो कि पत्थर को भी देवत्व प्रदान किये हुए हैं। यदि नहीं तो उनका समावेश अपने में करें।

हम कोई साधारण जड़ वस्तु थोड़े ही हैं। अज्ञानवश अपने को क्षुद्र (छोटा) समझे बैठे हैं। सर्व शक्तिमान ब्रह्म हमसे भिन्न अन्य नहीं है।

अयमात्मा हि ब्रह्मैव सर्वात्मकतया स्थितः।
इति निर्धारितं श्रुत्या बृहदारण्यक संस्थया।

अपरोक्षानुभूति

यह आत्मा सर्वात्म भाव से स्थित हुआ ब्रह्म ही है ऐसा बृहदारण्यक शाखा की श्रुति ने निश्चय किया है। गुरुदेव भगवान द्वारा प्रदत्त मन्त्र हमें प्रतिक्षण चेतावनी देता है कि हम ही सर्व शक्ति मान हैं, विभु हैं पर तदनुरूप (ब्रह्मवत्) व्यवहार हमें करना होगा तभी हम ब्रह्म हैं। शुद्ध

व्यवहार, शुद्ध भावना, शुद्ध विचार वाला ही शुद्ध है। हम शूद्रत्व का त्याग करें, महान बनें और वह महानता जब हमारे व्यवहार में आ जायेगी तो गुरुदेव भगवान का बच्चा भी देवत्व प्राप्त करके 'दीपात्प्रवर्तित इवान्यतर प्रदीप' दीपक से जला हुआ दूसरा दीपक किंचिन्मात्र भी प्रथम दीपक से कम नहीं होता इसी तरह –

न द्विषन्ति न याचन्ते, परनिन्दा न कुर्वते।
अनाहूता न चायान्ति तेनाश्मानोऽपिदेवता।।

यों देवत्व के गुण धारण करने पर देवता ही हो जायेगा।

सिद्धयोग मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं. 4

1. प्रकाशन का स्थान	:	श्री सिद्धगुफा, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)
2. प्रकाशन का अवधिक्रम	:	मासिक
3. मुद्रक का नाम	:	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	श्री सिद्धगुफा, सवाँई, आगरा (उ.प्र.)
4. प्रकाशक का नाम	:	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	श्री सिद्धगुफा, सवाँई, आगरा (उ.प्र.)
5. सम्पादक का नाम	:	दासलाल शर्मा
6. स्वत्वाधिकारी	:	दासलाल शर्मा

मैं दासलाल शर्मा एतद् द्वारा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

- दासलाल शर्मा

2 अप्रैल, 2012

कृते, सिद्धगुफा प्रकाशन, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा

योगसिद्धियाँ और उनकी प्राप्ति

श्री अमीरचन्द शास्त्री, साहित्याचार्य

हमारे शरीर पंच कोशात्मक हैं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय ये पाँच कोश हैं। योग दर्शन में योग साधना के अधिकार की प्राप्ति के लिए पाँच यम कहे गये हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह एवं पाँच ही नियम कहे गये हैं तप, स्वाध्याय, शौच, सन्तोष और ईश्वर प्रणिधान। इन्हीं दश नियमों की रूपान्तर में भगवान् मनु ने भी चर्चा की है –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

यमनियमों या इन दस धर्म–लक्षणों के द्वारा पवित्र हुए मन से साधक योग मार्ग में अग्रसर होता है। सर्वप्रथम आसन के द्वारा अन्नमय कोश को शुद्ध और सिद्ध करता है फिर प्राणायाम द्वारा प्राणयाम कोष को, प्रत्याहार द्वारा मनोमय कोश को, धारणा द्वारा विज्ञानमय कोश को एवं ध्यान द्वारा आनन्दमय कोश को शुद्ध और सिद्ध करके आठवें साधन समाधि द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है।

योग साधना द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार परमसिद्धि या संसिद्धि कहलाता है किन्तु इस संसिद्धि की प्राप्ति के मार्ग में अनेक सिद्धियाँ और भी आती हैं, यह उनका स्वभाव है। कोई साधक चाहे या न चाहे, ये सिद्धियाँ उसे वरण करती ही हैं। इनके इस प्रकार अनचाहे भी आ जाने से साधक को विश्वास होता है कि वह योग–मार्ग पर ठीक–ठीक प्रगति कर रहा है।

कभी–कभी दुर्बल साधक इन सिद्धियों के चक्र में ही पड़ा रह जाता है। तभी भगवान् पतंजलि ने लिखा है कि –

ते समाध्युपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः॥

ये सभी फलविशेष समाधि की प्रगति में विघ्न है क्योंकि इन्हें प्राप्त करने पर तथा कथित साधकों के मन में हर्ष और अहंकार आदि भावों का उदय हो जाता है जिनसे समाधि शिथिल हो जाती है किन्तु समाधि के विपरीत व्युत्थान अवस्था या व्यवहारदशा में ये फल–विशेष सिद्धियाँ कहे जाते हैं। वैसे तो ये सिद्धियाँ अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व नाम से आठ प्रकार की है और निस्तरङ्गता, दूर श्रवण दर्शन, मनोजवता, कामरूपता, परकाय प्रवेश, स्वेच्छ मृत्युता देवताओं के साथ क्रीडानुदर्शन, यथा सङ्कल्पसिद्धि, आज्ञा की अनुल्लङ्घनीयता, अप्रतिहत गति, त्रिकालज्ञता, निर्द्वन्द्वता, पर चित्त

परिज्ञान, अग्नि सूर्य जल तथा विषादि का प्रतिष्टम्भ, और अपराजय नाम से अठारह प्रकार की है। जब साधक उन–उन ध्येयों में संयम कर लेता है तब उसे ये सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के तीन अन्तरंग साधन यदि एक ध्येय में सिद्ध हो जाएँ तो वह स्थिति संयम कहलाती है। यह संयम ही इन सिद्धियों का मूल है। महर्षि पतंजलि ने अपने योग दर्शन में ऐसे ध्येयों का निर्देश करते हुए उक्त सिद्धियों की प्राप्ति का विवरण दिया है। श्री मद्‌भागवत के एकादश स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय में भी इनकी व्याख्या की गई है। हम यहाँ पर दोनों दृष्टियों की समीक्षा प्रस्तुत करते हैं।

पातञ्जल योग दर्शन में सिद्धियों का विवरण विभूतिपाद में दिया गया है। प्रारम्भ में धारणा, ध्यान और समाधि की परिभाषाएँ लिखी हैं। चित्त का एक देश या लक्ष्य में बन्धन धारणा, उसी की प्रतीति में चित्त की एकतानता ध्यान और केवल उसी ध्येय की प्रतीति में स्वरूप शून्यता समाधि कहलाती है। यदि एक ही ध्येय–विषय में यह तीनों प्रवृत्त हो तो वह स्थिति संयम कही जाती है। संयम के साथ आत्म्य कर लेना संयम का जय कहलाता है, इससे प्रज्ञा या विवेकख्याति का आलोक प्राप्त होता है अर्थात् प्रज्ञा ज्ञेय को प्रकाशित करने लगती है।

इसी संयम का स्थूल, सूक्ष्म अवलम्बनों के भेद से भिन्न–भिन्न चित्त वृत्तियों में विनियोग करने से फल विशेषों की या सिद्धियों की प्राप्ति होती है।

जब व्युत्थान संस्कार दब जाते हैं और निरोध संस्कार उभर आते हैं तो उसे निरोध परिणाम कहते हैं, इससे विक्षेप दूर हो जाने से चित्त प्रशान्तत्व ही हो जाता है। ऐसे ही जब चित्त की सर्वार्थता का क्षय और एकाग्रता का उदय हो जाता है तो उसे समाधि परिणाम कहते हैं, प्रशान्तवाहिता से चित्त शान्त कहलाता है और एकाग्रतोदय से उदित, शान्त और उदित दोनों अवस्थाओं में एक रूप का आलम्बन होना एकाग्रतापरिणाम कहलाता है। चित्त के इन तीनों परिणामों के जैसे क्रमशः स्थूल सूक्ष्म भूतों और इन्द्रियों में धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम समझ लेने चाहिए।

चित्त के उक्त तीनों परिणामों में संयम करने से अतीत और अनागत (भूत औ र भविष्य) का ज्ञान प्राप्त होता है। शब्द अर्थ और उनकी प्रतीति तीनों में इतरेतराध्यास को सङ्कर कहते हैं जो कि व्यवहार में होता है। यदि शब्द के वाचकत्व, अर्थ के वाच्यत्व और ज्ञान के प्रकाशकत्व का प्रविभाग करके उसमें संयम किया जाये तो साधक को सभी जीवों के शब्दों (आवाजों) का अर्थ ज्ञात हो जाता है, वह जान जाता है कि कौन पशु, पक्षी या सरीसृप क्या कह रहा है।

चित्त के वासना रूप संस्कारों का चाहे वे स्मृति मात्र को उत्पन्न करने वाले हों या जाति, आयु और भोग रूप में कर्मविपाक के कारण हों, साक्षात्कार करने से पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त होता है। मुखराग आदि चिन्हों से प्रतीत हुए किसी के चित्त में संयम करने से उसके चित्त का ज्ञान अर्थात् परचित्त, ज्ञान नामक सिद्धि प्राप्त होता है।

शरीर के रूप में संयम करने से रूप की चक्षुर्ग्राह्य रूपा शक्ति स्तम्भित हो जाती है

जिससे उस रूप के साथ किसी के भी चक्षुओं के प्रकाश का संयोग नहीं हो पाता अतः योगी को अन्तर्धान सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

इसी प्रकार शब्दादि गुणों में संयम करने से शब्दादिका भी अन्तर्धान हो जाता है।

कर्म दो प्रकार के हैं कुछ का फल भोगना प्रारम्भ हो चुका है कुछ का अभी फलभोग नहीं हुआ इन दोनों प्रकार के कर्मों में संयम करने से मृत्यु का ज्ञान हो जाता है कि मेरा शरीर कब कहाँ कैसे छूटेगा। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक उपद्रवों द्वारा भी अपनी मृत्यु का ज्ञान हो जाता है।

साधारणतया हम सुखी के प्रति ईर्ष्या, दुःखी के प्रति जुगुप्सा, पुण्यात्मा के प्रति असूया और पापात्मा के प्रति द्वेष करते हैं यह चारों चित्त कालुष्य हैं इन्हें हटाकर इनके स्थान पर क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा (निकट जाकर परिस्थितियों का ईक्षण करना) यह वृत्तियाँ बसानी चाहिए। जब साधक इन मैत्री आदि वृत्तियों में संयम करता है तो उसमें इनके बलों का उदय हो जाता है और वह सब की मैत्री आदि वृत्तियों को प्राप्त कर लेता है।

हाथी आदि बलवान प्राणियों के बल आदि पर संयम करने से उन–उन प्राणियों के जैसे बल आदि योगी को प्राप्त हो जाते हैं। प्रवृत्ति या ज्योतिष्मती के सात्विक प्रकाश से विषयों को भावित करने से सूक्ष्म विषय, व्यवहितविषय और दूरस्थ विषय का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। सूर्य में संयम से भूर्भुवः स्वः आदि सातों लोकों का ज्ञान प्राप्त होता है। चन्द्र में संयम करने से तारामण्डल का ज्ञान एवं ध्रुव में संयम करने से तारा मण्डल का गतिका ज्ञान प्राप्त होता है।

नाभि में जो षोडशार चक्र है उसमें संयम करने से शरीर रचना का ज्ञान प्राप्त होता है। कण्ठ–कूप में संयम से भूख, प्यास की निवृत्ति और कण्ठकूप से नीचे की कूर्म नाड़ी में संयम करने से शरीर की स्थिरता प्राप्त होती है जहाँ इसे कोई हिला भी नहीं सकता।

मूर्धा या ब्रह्म रन्ध्र में जो ज्योति है उसमें संयम करने से पृथ्वी और आकाश में विचरने वाले सिद्धपुरुषों का दर्शन प्राप्त होता है।

1961 में, मैं स्वामी व्यासदेव जी के पास योग निकेतन में साधना के लिए सम्मिलित हुआ था, उनकी आज्ञा से एक दिन मैंने ध्यानकाल का अपना अनुभव उनके प्रति निवेदन कर दिया, स्वामी जी बोले–शास्त्रीजी अकेले–अकेले आनन्द लेते हो कभी संकल्प करो कि यह आनन्द अमुक व्यक्ति को भी प्राप्त हो। उनके आदेशानुसार दूसरे दिन मैंने एक शर्माजी के लिए वैसा संकल्प किया। अभ्यास के बाद उस दिन स्वामी जी ने शर्माजी से ही पूछा क्या अनुभव हुआ? शर्माजी ने कहा मैं तो राधा कृष्ण आदि को नहीं मानता फिर वे मेरे ध्यान में क्यों आये तब स्वामीजी ने इसी सिद्धि का उल्लेख करते हुए कहा–

'मूर्ध ज्योति में संयम करने से सिद्ध पुरुषों का दर्शन होता है। यदि तुम राधाकृष्ण को भगवद्रूप नहीं मानते तो योगीश्वर या सिद्ध पुरुष तो मानते ही हो।'

बिना किसी निमित्त के केवल मन में उत्पन्न होने वाले अविज्ञावादी और प्रथम उत्पन्न हो

रहे ज्ञान को प्रतिभा कहते हैं। प्रतिभा में संयम करने से 'प्रातिभ' अर्थात् विवेकख्याति का पूर्व विभावक ज्ञान उत्पन्न होता है। जैसे सूर्योदय से पूर्व सूर्य की प्रभा। इस प्रातिभ ज्ञान से प्रतिभाशाली व्यक्ति बिना किसी संयम के भी सब कुछ जान जाता है।

हृदय में संयम करने से अपने और दूसरे के चित्त का ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् अपने चित्त की सुप्त लुप्त वासनाओं को और दूसरे के चित्त के रागादियों को जान लेता है।

सत्व और पुरुष भोग्य और भोक्ता होने के कारण एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है किन्तु इनमें भेद की प्रतीति न होने से सुख दुःखादि का भोग प्राप्त है इन दोनों के परार्थ और स्वार्थ होने को संयम करने से पुरुष (आत्मा) स्वावलम्बन ज्ञान को प्राप्त करता है।

इसी संयम से पूर्वोक्त प्रातिभ ज्ञान, श्रावण ज्ञान वेदना या स्पर्शेन्द्रिय ज्ञान–आदर्श या चक्षुरिन्द्रिय ज्ञान आस्वाद या रसनेन्द्रिय ज्ञान, और वार्ता या गन्धेन्द्रिय ज्ञान सामान्य की अपेक्षा प्रकृष्टतर रूप में प्राप्त होते हैं।

समाधि वश बन्धन के कारण धर्मा धर्म अति शिथिल हो जाते हैं तब साधक चित्त के इन्द्रियों द्वारा विषयों की ओर बढ़ने के ज्ञान से पर शरीर प्रवेश सिद्धि को प्राप्त करता है। उदान नामक प्राणवायु को प्राणायामादि द्वारा जीत कर योगी जल पर, कीचड़ पर और काँटे आदियों पर असंग रूप से चल जाता है और उनमें डुबा दिये जाने पर भी निकल आता है। ऐसे ही समान वायु को जीत कर योगी अग्नि के समान तेज से प्रज्वलित हो उठता है।

श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध पर संयम से दिव्य श्रवण शक्ति शरीर और आकाश के सम्बन्ध पर संयम से रुई जैसा हलकापन और आकाश मन रूप सिद्धि को प्राप्त करता है। न जाने दी गई चित्त वृत्ति महाविदेहा कहलाती है उससे चित्त के प्रकाश पर के आवरण क्लेश कर्मादि का नाश हो जाता है। पृथ्वियादि पंच महाभूतों के स्थूलत्व गन्धादिमत्व, गन्धतन्मात्रादि सूक्ष्मत्व, प्रकाश प्रवृत्ति स्थिति रूप गुण और भोगापवर्गादि सम्पादन रूप अर्थत्व में संयम करने से उन पर जय प्राप्त होती है। यह सभी पदार्थ उसके अनुगामी हो जाते हैं।

इस भूत जय से ही योगी को अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। कायसम्पत् और शरीर धर्म रूपादियों का अनभिघात या अनाश प्राप्त होता है। रूप, बल, लावण्य से युक्त वज्र–सा शरीर होना कायसम्पत् कहलाता है। इन्द्रियों की विषयाभिमुखी वृत्ति, उनके प्रकाशकत्व, अहंकार, सम्बन्ध और प्रयोजन में संयम करने से इन्द्रिय–जय–वश्येन्द्रियता प्राप्त होती है। इन्द्रिय जय से मनो जवित्व–मन के समान वेगशाली होना, इन्द्रिय भाव और प्रधान जय या सर्ववशित्व प्राप्त होते हैं। बुद्धि से आत्मा की अन्यताख्याति में संयम से सब भावों पर अधिष्ठातृत्व और सर्वज्ञता सिद्धि प्राप्त होती है।

इन सिद्धियों के प्रति भी वैराग्य होने पर रागादि दोषों के बीज अविद्या आदि का क्षय होता है और तब आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति रूप मोक्ष प्राप्त होता है।

इन सिद्धियों के स्वामी भूतदेवता योगी को अनेक प्रकार के भोगों के लिए उपनिमन्त्रित

करते हैं किन्तु विवेकशील योगी न तो उनमें सक्त होता है और न ही अभिमान करता है क्योंकि संग और स्मय से फिर अनिष्ट स्थिति आ सकती है। काल के सूक्ष्म अवयव क्षण और उनके क्रम संयम करने से विवेकात्मक ज्ञान प्राप्त होता है।

जातिगत, देशगत और स्वरूपगत भेदों से जिनमें भिन्नता प्रतीत नहीं होती ऐसे दो सदृश पदार्थों में संयम से उनके भेद की प्रतीति होने लगती है। अन्तिम भूमिका में संयम के ही प्रभाव से उत्पन्न ज्ञान तारक संसार सागर से पार करने वाला होता है। सर्वविषयक, सर्वावस्थाविषयक और क्रम रहित होता है जिससे वह करतलामलकवत् सब कुछ एक साथ देखता है। सत्व और पुरुष की शुद्धि में समानता होने पर कैवल्य या मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार पातञ्जल योग-दर्शन में वर्णित सिद्धियों का विवरण और उनकी प्राप्ति के उपाय भूत भिन्न-भिन्न संयमों – धारणा, ध्यान, समाधि के एक विषयकत्वों का यहाँ निरुपण किया गया है।

आरोग्य सम्बन्धी दोहे

शीतल जल में डालकर सौंफ गलाओ आप।
मिश्री के संग पान कर मिटे दाह-संताप।।

फटे बिवाई या मुँह फटे, त्वचा खुरदुरी होय।
नीबू-मिश्रित आँवला सेवन से सुख होय।।

सौंफ इलायची गर्मी में, लौंग सर्दी में खाय।
त्रिफला सदाबहार है, रोग सदैव हर जाय।।

वात-पित्त जब-जब बढ़े, पहुँचावे अति कष्ट।
सोंठ, आँवला, दाख संग खावे पीड़ा नष्ट।।

नीबू के छिलके सुखा, बना लीजिए राख।
मिटै वमन मधु संग ले, बढ़ै वैद्य की साख।।

सिद्धयोग

आय-व्यय का विवरण वर्ष - 2011-12

आय		व्यय	
पिछला शेष (बैंक में जमा)	277668/-	कागज व छपाई	124977/-
नगद हाथ में	9591/-	कार्यालय खर्च	13408/-
वार्षिक शुल्क से प्राप्त	122920/-	बैंक में जमा	335006/-
सहयोग राशि प्राप्त	45523/-	नगद हाथ में	1734/-
मनीआर्डर से प्राप्त	5130/-		
बैंक से प्राप्त ब्याज	14293/-		
कुल योग	475125/-	कुल योग -	475125/-

सहयोग राशि दाताओं की सूची

डॉ. अनुरुद्ध प्रधान, गाजीपुर	2500/-
सुरेन्द्र सिंह, राजापुर	151/-
श्रीमति कृष्णा वर्मा, अम्बाला कैंट	500/-
गिनिया देवी, दिल्ली	202/-
वीरेन्द पाल, करनाल (हरि.)	500/-
श्रीमती कल्पना गुप्ता, लखनऊ	2101/-
पं. जगज्योति नारायण शर्मा, नई दिल्ली	2000/-
कुँवर ए.के. सिंह, मिर्जापुर	501/-
सुरेन्द रावल कोहण्ड, करनाल	501/-
कु. आलपि वर्मा, दिल्ली	1100/-
जगदीश प्रसाद गुप्ता, कालपी	500/-
विजय कुमार बंसल, दिल्ली	360/-
ओ. पी. शर्मा, पिन्जौर	1100/-
कुलदीप शर्मा, पिन्जौर	500/-
आनन्द झाग, एत्मादपुर आगरा	3100/-
अशोक गुप्ता, मेरठ	500/-
जसवन्त प्रधान, गुढा करनाल	500/-
कर्मवीर सिंह, गुढा करनाल	500/-
अमरनाथ वर्मा, बलिया	2000/-
जवाहर लाल श्रीवास्तव लंका, वाराणसी	2100/-
ओमकार नाथ श्रीवास्तव, चितईपुर, वाराणसी	1100/-
बलवंत सैनी जीन्द (हरि.)	505/-
ओमवती देवी शर्मा, दिल्ली	500/-
रजनीश वाचस्पति, गोरखपुर	1101/-
जगदीश प्रसाद गुप्ता, कालपी	1100/-
कुल योग -	45523/-

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11 **APRIL 2012**

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सेवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता,
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयता चित्तेऽति गम्भीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञातता,
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता सत्स्वेव संदृश्यते॥

धर्म में तत्परता, मुख में मधुरता, दान देने में अत्यन्त उत्साह का होना, मित्रों के प्रति निष्कपटता, गुरु के प्रति नम्रता, अन्तःकरण में समुद्र के समान गम्भीरता, आचार में पवित्रता, गुणों में रसिकता, शास्त्रों में विज्ञता, रूप में सुन्दरता और परमेश्वर की भक्ति – ये बातें सज्जनों में ही दृष्टिगोचर होती हैं।

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

☐☐☐☐☐☐

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14565. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा